द्वितीय अध्याय

माखनलाल चतुर्वेदी तथा रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में युगीन परिस्थितियाँ एवं राष्ट्रीय स्वर

(क) युगीन परिस्थितियाँ

- राजनीतिक परिस्थिति
- सामाजिक परिस्थिति
- आर्थिक परिस्थिति

(ख) राष्ट्रीय काव्य और राष्ट्रीय कवि

- माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय स्वर
- रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय स्वर

द्वितीय अध्याय

(क) युगीन परिस्थितियाँ

माखनलाल चतुर्वेदी जी का जन्म 4 अप्रैल 1889 ई. में मध्यप्रदेश के होशंगाबाद के 'बाबई' नामक गांव में हुआ तथा देहांत 30 जनवरी 1968 ई. में। दिनकर जी का जन्म भी कुछ अंतराल बाद 30 सितंबर 1908 ई. में बिहार के मुंगेर में 'सिमरिया' तथा मृत्यु 23 अप्रैल 1974 ई. में हुई। माखनलाल चतुर्वेदी जी कुल 79 वर्ष तथा दिनकर 66 वर्ष तक जीवित रहे। दोनों के जीवन काल में कुल 60 वर्ष ऐसे हैं जो एक समान हैं, तो उन वर्षों में जो देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियां थीं, वह भी एक समान थीं। मैंने प्रथम अध्याय में देश की परिस्थिति का विस्तार से वर्णन किया है। मुख्य रूप से आधुनिक काल से भारत के स्वतंत्र होने तक। फिर भी मैं यहां युगीन परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन तथा इन दोनों की युगीन परिस्थितियों का वर्णन इस अध्याय में करूंगी। इन युगीन परिस्थितियों का प्रभाव दोनों के जीवन तथा कृतियों पर समान रूप से पड़ा। तत्कालीन परिस्थितियों में अंग्रेजी दमन से ग्रसित समाज को छुटकारा दिलाने का कार्य इन दोनों कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से किया।

जब हम किसी कवि की भाषा का अध्ययन करते हैं, तो उसके लिए उस कवि की युगीन परिस्थितियों का अध्ययन करना भी आवश्यक हो

जाता है। जिससे यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियों ने कवि को और उसकी रचनाओं को प्रभावित किया होगा, क्योंकि साहित्य सदैव समाज की वास्तविकता का बयान करता है। साहित्य, समाज में घटने वाली घटनाएं चाहे वो जनसामान्य का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संघर्ष हो या दु:ख हो, साहित्य उसे यथार्थ रूप से हमारे सामने भाषा के माध्यम से पेश करता है। साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं होता अपितु वह समाज को प्रेरित भी करता है तथा उसके सापेक्ष भी चलता है।

राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक मीमांसा का उद्भव विकास एवं प्रचलन देश, काल एवं परिस्थितियों से संयुक्त होता है। "स्वस्थ साहित्य के निर्माण के लिए समाज की आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक इत्यादि भावनाओं का ग्रहण आवश्यक है। इसे किस रूप में किस हद तक ग्रहण किया जाए, इसका औचित्य-निर्वाह साहित्यकार के दायित्व पर ही निर्भर करता है....वस्तुओं का साहित्य में ग्रहण समाज की गतिविधियों से अनुप्राणित होता है। समाज का सत्य गत्यात्मक सत्य होता है। यह युग विशेष में परिवर्तित होता रहता है। साहित्य भी सदा गत्यात्मक सत्य को ही अपनाता है।..... समाज ही वह आधारभूमि है जिस पर साहित्य का भवन निर्मित होता है, साहित्य रूपी वृक्ष अपने शाखामय विस्तार के लिए समाज से खाद्य और पानी ग्रहण करता है। दोनों के संबंध अटूट हैं।"[1]

- **राजनीतिक परिस्थिति**

अंग्रेजों के भारत आगमन से पहले भारत राजनीतिक रूप से छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। राजा आपस में लड़ते-झगड़ते थे और कभी-कभी एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए विदेशी आक्रमणकारियों का साथ भी दे देते थे। राजाओं के आपसी झगड़ों का कारण कोई सामाजिक तथा मानवीय आदर्श नहीं था बल्कि अहंकार भावना, राज्य विस्तार करना और सुंदर स्त्रियों का अपहरण करना आदि लालसाएं होती थीं। हिंदी साहित्य में आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल तक यही परिदृश्य दिखाई देता है। जब भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ तब समूचा देश अंग्रेजों का गुलाम बन गया और भारतीयों को पराधीनता का अनुभव हुआ। उसके बाद अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ मुक्ति का अभियान प्रारंभ हुआ।

पश्चिमी विचारधारा एवं विदेशी शासन ने भारतीय चिंतन तथा संस्कृति की उपादेयता के संबंध में जो चुनौती दी उसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप सुधारवादी आंदोलनों का जन्म हुआ। राजा राममोहन राय में इस प्रतिक्रिया का सर्वप्रथम संकेत मिलता है जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। वैसे शुरुआती दौर में राजा राममोहन राय के मन में अंग्रेजों के प्रति श्रद्धा का भाव था परंतु बाद में धीरे-धीरे विदेशी सत्ता के प्रति घृणा की भावना जोर पकड़ती गई और यही स्थिति प्रत्येक

भारतीय जनमानस की भी हो गयी और यह घृणा समाज के प्रत्येक वर्ग में कई प्रकार से, कई स्थानों पर व्यक्त होने लगी। जनता इसका सशस्त्र विद्रोह करने लगी ताकि ब्रिटिश शासक उनके धर्म, संस्कृति एवं राजनीतिक स्वतंत्रता पर और आघात न कर सके। ब्रह्म समाज की स्थापना के बाद अन्य धार्मिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव देश पर पड़ा। प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियोसॉफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन आदि की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही।

देश में 1857 ई. की क्रांति से स्वाधीनता आंदोलन की शुरुआत होती है। इस क्रांति को स्वाधीनता संग्राम की पहली कड़ी माना जाता है। देश के राजनीति के इतिहास में यह विद्रोह अंग्रेजों द्वारा बेशक दबा दिया गया परंतु इस विद्रोह से भारतीयों में एकजुट होने की भावना उत्पन्न हुई और संपूर्ण भारत में राष्ट्रीय चेतना की लहर दौड़ गयी। इस दृष्टि से देखा जाए तो यह विद्रोह असफल होकर भी सफल रहा।

भारत में तत्कालीन घटित घटनाएं तथा राजनीतिक परिस्थितियों में जो मुख्य हैं। वह इस प्रकार है-

1885 ई. में कांग्रेस की स्थापना, जो ब्रिटिशों की चाल थी। 1905 ई. में बंग-भंग, 1907 ई. में सूरत अधिवेशन में कोंग्रेस का दो दलों में बंट जाना-नरम दल और गरम दल। वहीं एक और दल सक्रिय था। जिसे भारतीय इतिहास में क्रांतिकारी कहा गया। जिन्हें अंग्रेज आतंकवादी कहते

थे। इन क्रांतिकारियों के कार्यों से जनता में जोश उत्तेजित हो रहा था। वहीं नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस जैसे नेताओं के आग्रह पर देश मर मिटने को तैयार था। ब्रिटिश सरकार भी भारतीयों के स्वतंत्रता आंदोलनों को दबाने के लिए कड़ी कार्रवाही कर रही थी। 1914 ई. में कांग्रेस पर गरम दल का प्रभुत्व, तिलक और एनी बेसेंट द्वारा चलाया गया होमरूल आंदोलन, 1914-1918 ई. का प्रथम विश्वयुद्ध, रौलेट एक्ट और जलियांवाला बाग़ हत्याकांड जैसे दो दर्दनाक घटनाओं से पूरे देश में ऐसा सैलाब आया, जिसने पूरे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांध दिया। भारतीय जनता ब्रिटिशों का विद्रोह करने लगी और आन्दोलन करने को तैयार हो गयी। गाँधी जी अपने अहिंसावादी सिद्धांतों को लेकर समय-समय पर आन्दोलन करते हैं परन्तु समाज में ऐसा भी वर्ग था जो अंग्रेजों को ईंट का जवाब पत्थर से देने में विश्वास रखता था और वह वर्ग क्रांतिकारियों का था। देश की राजनीति में तिलक और महात्मा गांधी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राजनीतिक गतिविधियों को देखते हुए, 1920 ई. के पहले के युग को तिलक युग और उसके पश्चात के युग को गांधी युग मान सकते हैं। इन दोनों का प्रभाव तत्कालीन परिवेश पर पड़ा। इनके इर्द-गिर्द ही तत्कालीन राजनीति घूमती है। इस समय तक देशवासियों को यह समझ आ गया था कि ब्रिटिश सरकार उनका दमन कर रही है। ऐसे समय में देशवासियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित घटनाओं ने बल प्रदान किया। जिसमें जापान की रूस पर विजय, तुर्कों की यूनानियों पर

विजय, इटली का स्वतंत्रता युद्ध आदि। राजनीतिक क्षेत्र में इस समय न केवल भारत अपितु समस्त विश्व उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा था। इस काल में सम्पूर्ण विश्व में कई महायुद्ध भी हुए। कई गुलाम देश आजाद हो रहे थे। यहीं से प्रेरणा पाकर ही भारत में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन शुरू हुआ। भारत में यह समय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलनों का युग था। इन सभी घटनाओं ने भारतीयों को स्वतंत्रता संघर्ष के लिए प्रेरित किया। 1920 ई. में तिलक का देहांत हो गया। तिलक के देहांत के बाद तिलक युग की समाप्ति और गांधी के राजनीति में आगमन से गांधी युग की शुरुआत होती है। गांधी युग हिंदी साहित्य के इतिहास में छायावाद नाम से जाना जाता है। भगत सिंह द्वारा असेम्बली में बम फेंकना इस जुर्म में इनके साथ-साथ राजगुरु, सुखदेव, को फांसी आदि घटनाएं घटित हुई, जिससे जनता और क्रोधित हुई। गांधी युग में चौरी-चौरा कांड (1922 ई.), स्वराज्य पार्टी की स्थापना (1923 ई.), काकोरी षडयंत्र (1925 ई.), किसान-मजदूर दल की स्थापना(1927 ई.), बारडोली सत्याग्रह (1928 ई.), साइमन कमीशन (1929 ई.), 1930 ई. में गाँधी जी की दांडी यात्रा, नमक कानून तोड़ना, गाँधीजी की गिरफ्तारी आदि इन सबसे जनता और भड़क उठी। गाँधी-इरविन समझौता (1931 ई.), ब्रिटिशों द्वारा प्रेस और संस्थाएं प्रतिबंधित करना, नेताओं को काला पानी की सजा देना। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने भारतीयों को नियंत्रण में करने के लिए अपनी दमन नीति को और व्यापक किया। इन्हीं तत्कालीन

परिस्थतियों ने देश में ऐसा वातावरण तैयार कर दिया था कि हमारा साहित्य और कवि भी इससे अछूते नहीं रह सके। अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीति ने देश में सांप्रदायिक दंगों का विकराल रूप धारण कर लिया। देश में अंग्रेजों की क्रूरता और दमन से स्वतंत्र होने के लिए गांधी की अहिंसा और क्रांतिकारियों की हिंसात्मक प्रवृतियां दोनों संघर्षशील एवं सक्रिय थीं। गांधी जी का तो ऐसा भी मानना था कि राज्य में पुलिस भी अहिंसक हो। वे अहिंसावादी थे, इसलिए उनका कहना था कि “अहिंसक राज्य में नागरिक उपद्रवों की संख्या भी कम हो जाएगी। जनसमूहों में पारस्परिक संघर्ष की घटनाएं कम होंगी। जनता हिंसात्मक घटनाओं पर अहिंसक नियंत्रण कायम करेगी। अहिंसा से जनजीवन ओत-प्रोत होने पर हिंसा की वारदातें स्वतः सीमित हो जाएगी। अहिंसक राज्य में सांप्रदायिक दंगों तथा गंभीर श्रम-संकटों की स्थिति नहीं रहेगी पुलिस को हिंसात्मक तरीके अपनाने की छूट नहीं होगी।”[2]

वहीं दूसरी और क्रान्तिकारी “तिलक ने उदारवादियों का उपहास करते हुए उनके सिरमौर गोखले को दादाभाई का अनुसरण करने को कहा। दादाभाई जीवन के अंतिम दिनों में ब्रिटिश शासन से बहुत निराश थे। तिलक गोखले को दादाभाई से प्रेरणा प्राप्त कर इंग्लैंड के उदारवादियों पर अधिक निर्भर न रहने की सलाह दे रहे थे।”[3]

जहां गांधी अहिंसा से आजादी प्राप्त करना चाहते थे, वहीं क्रांतिकारी 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा' जैसी धारणा के बल पर स्वराज्य हासिल करना चाहते थे। चारों तरफ स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए बहिष्कार, आंदोलन, हड़ताल, दमन, शोषण, फांसी, हत्याकांड, मजदूर व किसानों द्वारा इंकलाब जिंदाबाद का नारा, कानून तोड़ना, जेल यात्रा आदि क्रियाकलाप निरंतर प्रवाहमान हो रहे थे। वहीं अंग्रेजों ने भारतीयों में ऐसी फूट डाली कि अंततः मुस्लिम लीग को सभी समस्याओं का हल भारत का विभाजन ही नजर आ रहा था और परिस्थितियां भी ऐसी उत्पन्न हो गयी थीं कि कांग्रेस को भी यह विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। "15 जून को कांग्रेस की महासमिति में 29 के विरुद्ध 156 से विभाजन की योजना स्वीकार कर ली गई,"[4]क्योंकि स्थिति इतनी भयावह हो गयी थी कि हिंदू-मुसलमानों के बीच नरसंहार हो रहा था। खून की नदियां बहने लगी थीं। तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष कृपलानीजी के शब्द कुछ इस प्रकार थे- "हिंदुओं मुसलमानों के बीच मारकाट के बुरे कृत्यों की होड़ चल रही है। डर यह है कि यदि हम इस तरह एक-दूसरे से बदला लेने तथा एक-दूसरे का तिरस्कार करते चले जायेंगे तो धीरे-धीरे हम नरभक्षकों अथवा उससे भी बुरी स्थिति में जा गिरेंगे।"[5] कई वर्षों के कड़े संघर्ष के बाद 15 अगस्त 1947 ई. को भारत आजाद तो हो गया परंतु उसके दो टुकड़े हो गए इससे गांधीजी को गहरा आघात लगा क्योंकि वह अहिंसावादी थे इसलिए उन्होंने "विभाजन को एक आध्यात्मिक दुर्घटना

कहा उन्होंने कांग्रेस से असहमति प्रकट करते हुए कहा कि यह 32 वर्षों के सत्याग्रह का लज्जाजनक परिणाम था।"[6]

देश आजाद होने के पश्चात "भारत और पाकिस्तान के उद्घोषित क्षेत्रों की जनता का परिवर्तन प्रारंभ हो गया, जिसमें भीषण नरसंहार देखने में आया। बहुत बड़ी संख्या में पाकिस्तान से निष्काषित हिंदू भारत आये। जिसके परिणामस्वरूप नवोदित भारत के समक्ष अनेक गंभीर समस्याएँ उपस्थित हो गयी।"[7]

आजादी के बाद तत्कालीन राष्ट्रीयता का अंत हो गया था। परंतु "अचानक भारत को एक नई विपत्ति में फंसना पड़ता है। सन् 1962 ई. के 20 अक्टूबर को अचानक चीनियों का आक्रमण भारत के उत्तरी भाग पर हो जाता है। लद्दाख और नेफा में लड़ाइयां प्रारंभ होती है और पुनः राष्ट्रीयता का नये रूप में प्रारंभ होता है।"[8] स्वतंत्रता के बाद भारत के नव-निर्माण में आने वाली समस्याएँ और इसी बीच चीन और पाकिस्तान द्वारा किया गया आक्रमण आदि अन्य राजनीतिक समस्याएं भी थीं।

- **सामाजिक परिस्थिति**

स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रथम प्रयास सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों के द्वारा हुआ था। 19वीं शताब्दी में भारतीय समाज की मानसिक जड़ता एवं निष्क्रियता के कारण समाज विभिन्न कुरीतियों व अंधविश्वास के चंगुल में फंसा हुआ था। इस युग का सामाजिक जीवन

विकृत होता जा रहा था। समाज में उस समय जो घटनाएँ घट रही थीं। उनमें मुख्य घटनाएँ थीं- विधवा विवाह समस्या, सती-प्रथा, जाति-वर्ण की समस्या, अस्पृश्यता, सांप्रदायिकता, नारी समस्या, दलित समस्या, स्त्री-शिक्षा निषेध, समुद्र-यात्रा मनाही, अशिक्षा के कारण अज्ञानता, अंधविश्वास, पुरातन व आधुनिक प्रवृत्तियों की बहुलता आदि उल्लेखनीय थीं। "बीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज जहां विगत परंपराओं, मान्यताओं और रूढ़ियों का अनुगामी रहा है। वहीं समसामयिक सुधार आंदोलनों से भी निरंतर प्रभावित हुआ है। लेकिन व्यापक रूप में धर्म और अर्थ दो ऐसे तत्व हैं जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के हिंदी प्रदेश के सामाजिक जीवन को सर्वाधिक प्रभावित किया है।"[9]सामाजिक दृष्टि से यह युग सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन का युग था। इसकी आवश्यकता इसलिए थी क्योंकि भारतीयों का जीवन मूल्य हीन हो गया था। अंग्रेजों के निर्दयतापूर्ण व्यवहार से भारतीयों की चेतना शक्ति निष्क्रिय हो गयी थी। अंग्रेजी शासक भारत में अपनी जड़ों को गहरा करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने भारत की सांस्कृतिक चेतना को समाप्त करने की कोशिश की। भारत में अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति को लागू किया। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म का प्रचार कर भारतीयों का धर्म-परिवर्तन करना शुरू कर दिया। परिणामस्वरूप ब्रहम-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाएं अस्तित्व में आयीं। इन संस्थाओं ने समाज, धर्म और राजनीति

में व्याप्त रुढ़ियों का विरोध कर जन-जागरण करने का प्रयत्न किया। इन सभी सुधार आंदोलनों का एकमात्र उद्देश्य था समाज की कुरीतियों को जड़ से मिटाना और स्वाधीनता के लक्ष्य को हासिल करना। समाज में नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उन्हें सभी अधिकारों से वंचित रखा जाता था। स्त्रियों को किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। राजा राममोहन राय ने स्त्रियों के लिए, उसके अधिकारों के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन्होंने सती-प्रथा को भारतीय समाज का अत्यंत क्रूर कृत्य बताया। "उन्होंने सामजिक न्याय के सन्दर्भ में स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार का घोर विरोध किया। वे चाहते थे कि सरकार ऐसा कानून पारित करे जिससे कोई भी पुरुष एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह न कर सके। उन्होंने जाति-व्यवस्था का भी घोर विरोध किया और इसे हिंदू जाति का कलंक बताया। वे स्वयं अंतर्जातीय विवाह के पक्ष में थे।"[10]वहीं अन्य समाज सुधारक स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया। वेदों को साक्ष्य मानते हुए उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति में सुधार करने का प्रयत्न किया और उसकी नयी व्याख्या की। वे भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के साथ-साथ राजनीतिक चेतना के लिए भी समाज सुधार करना चाहते थे। प्रार्थना समाज का भी समाज सुधार में महत्वपूर्ण स्थान रहा। वैसे इनका सिद्धांत ईश्वरवादी था परंतु यह समाज सुधार के पक्ष में थे। थियोसॉफिकल सोसायटी के माध्यम से ऐनीबेसेंट ने, जो कि विदेशी महिला थीं, देश की राष्ट्रीयता को जाग्रत करने में अपना

महत्वपूर्ण योगदान दिया। ये स्वयं को पूर्व जन्म में हिंदू मानती थीं और हिंदू धर्म को सर्वश्रेष्ठ धर्म। रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानंद का भी राष्ट्रीयता के प्रचार-प्रसार में सराहनीय योगदान रहा है। इनके गहन, मनन तथा अध्यात्मिकता की भारत, भारतीय साहित्य तथा विश्व में भी गहरी छाप रही है। गांधीवादी विचारधारा का भी तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों पर प्रभाव पड़ा। स्वतंत्रता के पश्चात शोषितों और पीड़ितों जिनमें किसान, मजदूर, नारी और दलित शामिल थे। सभी को विकास के लिए समान अवसर दिया गया।

- **आर्थिक परिस्थिति**

आर्थिक दृष्टि से भारत देश आरंभ में संपन्न था। यह सर्वविदित है कि भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के देशी राजा प्रजा पर अत्याचार करते थे। परंतु इतना नहीं करते थे क्योंकि उन्हें डर था कि प्रजा कहीं विद्रोह न कर दे। जब अंग्रेज भारत आये तो उन्हें अंग्रेजों का संरक्षण मिला जिससे उनका यह डर भी समाप्त हो गया। इसके बाद तो देशी रियासतों ने किसानों पर जो अत्याचार किए कि उनकी दशा अत्यंत दीन हीन हो गयी। भारत में अंग्रेजों के आगमन से भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जोर पकड़ लिया। अंग्रेजों ने भारत में जिस प्रकार की आर्थिक नीति अपनायी। उससे समस्त भारत आर्थिक रूप से खोखला हो चुका था। समाज में इस औद्योगीकरण के

कारण दो वर्ग उभर कर आए- मालिक और मजदूर। आर्थिक विषमता उत्त्पन्न हुई। औद्योगीकरण ने देश के उद्योग-धंधों को बड़ी हानि पहुंचाई। अंग्रेजों ने भारत का बड़ी बेरहमी से आर्थिक शोषण किया। जिससे देश आर्थिक रूप से कमजोर होता गया। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया लिखते हैं कि, "शासन की नीतियों ने पुरानी दस्तकारी व कला कौशल को हानि पहुंचायी। भारत से खद्दर विदेशों को पर्याप्त मात्रा में जाता था, जिसके बदले में गाँव के जुलाहों आदि को बहुत धन मिलता था, पर लंकाशायर के कपड़े आने से वह समाप्त होने लगा तथा लगभग बीस लाख जुलाहे अपने कुटुंब के लोगों सहित, जिनकी संख्या लगभग एक करोड़ थी, बेकार हो गये। इसके अतिरिक्त नगरों में कूड़ा भरने वाली गाड़ियों के लिए रवर टायर आने से बढ़ई बेरोजगार हो गये। बकिंघम तथा एंटवर्ष से आने वाले तार, कब्जे खूँटी, ताली-ताले आदि लोहे के सामानों के कारण भारत के लोहार बेकार हो गये। जूते भी विदेशों से आने लगे तथा मोची की जीविका कम हो गयी। चीनी के तथा एनामेल के बर्तनों के कारण कुम्हारों की रोजी मारी गयी। इस प्रकार अंग्रेजी शासन ने भारत में हर प्रकार की दस्तकारी को नुकसान पहुंचाया तथा करोड़ों लोगों को बेकार कर दिया।"[11] "लॉर्ड सेलिसवरी ने, जो सन 1857 में भारत-मंत्री थे, स्वयं स्वीकार किया कि ब्रिटिश शासन भारतीयों का खून चूस रहा था।"[12] आर्थिक रूप से भी समाज का बंटवारा हो गया। उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। पराधीन और शोषित भारत का

यह युग अकाल, निर्धनता, टैक्स, भुखमरी और महंगाई जैसी भयानक कठिनाइयों के दौर से गुजर रहा था। अंग्रेजों की आर्थिक नीति ने भारत के उद्योग धंधों को नष्ट कर दिया था। अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक सुविधा के लिए भारत में रेल, सड़क, तार, डाक आदि का निर्माण करवाया। विदेशी वस्तुओं का भारत में प्रचार करना यह भी अंग्रेजों की चाल थी विदेशी वस्तुओं के प्रचार से भारत की आर्थिक व्यवस्था लड़खड़ाने लगी। अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों से व्यथित होकर भोलानाथ चन्द्र सन् 1877 ई. में लिखते हैं कि “बिना बल का प्रयोग किये, बिना राजद्रोह किये तथा बिना वैधानिक सहायता की अपेक्षा किये अपने पुराने गौरव को प्राप्त कर लेना हमारे हाथ की बात है। हमारे पास केवल एक परन्तु सबसे अधिक प्रभावशाली अस्त्र शेष है- नैतिक विरोध; और इस अस्त्र का प्रयोग किसी प्रकार का अपराध नहीं हो सकता। इस अमोघ वस्त्र के प्रयोग का एकमात्र उपाय है-विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।”[13]विदेशी वस्तुओं के विरोध में ही स्वदेशी आंदोलन हुआ। इसी प्रकार ब्रिटिश शासन के लगातार शोषण से देश की आर्थिक दशा में अवनति होती गयी। राजनीतिक आंदोलनों के समय भी ऐसी ही दशा रही।

जब भारत स्वतंत्र हुआ तब देश के नव-निर्माण के समय देश को आर्थिक रूप से सुधारने का प्रयत्न किया गया परन्तु अपने देश के नेता जो सत्ता के नशे में चूर हो गये थे उन्होंने इस कार्य में कोई सहयोग

नहीं किया। फलस्वरूप देश की निर्धन जनता निर्धन होती गयी और अमीर और अमीर। यही कारण था कि देश के नव-निर्माण में भारत को कई समस्याओं का सामना करना पड़ा।

- **राष्ट्रीय काव्य और राष्ट्रकवि**

राष्ट्रीय काव्य से तात्पर्य है, साहित्य के माध्यम से किसी भी देश की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतना के समन्वित स्वरूप को अभिव्यक्ति प्रदान करना। राष्ट्रीय काव्य से जो भावना उत्पन्न होती है। वह किसी भी देश की जनता को संगठित करके रखती है और देश की स्वाधीनता के लिए बलिदान होने के लिए प्रेरित करती है। हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय कविता के तीन चरण नजर आते हैं-

1. प्रथम चरण- भारतेंदु युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र में मिलती है। जब उन्होंने भारत-दुर्दशा पर विलाप करते हुए कहा था -

   "रोवहू सब मिलिकै आवहू भारत भाई।
   हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"[14]

2. द्वितीय चरण- इस चरण के पुरोधा मैथिलीशरण गुप्त और माखनलाल चतुर्वेदी आदि हैं। ये वर्तमान दुर्दशा के साथ-साथ स्वर्णमयी और गौरवपूर्ण अतीत का अनुभव करते हुए नजर आते हैं।

3. तृतीय चरण- यह चरण दिनकर जी का है। जिसमें राष्ट्रीय कविता, दिनकर जी की उँगली पकड़कर आगे बढ़ती हुई दिखती है।

तत्कालीन परिस्थितियों में अंग्रेजी दमन से ग्रसित समाज को छुटकारा दिलाने का कार्य साहित्यकारों ने ही किया। ऐसे समय में राष्ट्रकवि ही देश की प्रगति और उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि एक राष्ट्रकवि ही देश की स्थिति को लेकर चिंतन और मनन करता है। "आधुनिक युग में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए किसने आहवान किया? राष्ट्रकवियों ही ने न! भारतेंदु ने राष्ट्रीय गीतों की जो परंपरा प्रारंभ की। उसका पल्लवन किया माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामकृष्ण त्रिपाठी, सुभद्रा कुमारी चौहान और रामधारी सिंह 'दिनकर' ने। इनके गीतों ने ही भारतीय समाज को जगाया राष्ट्र की आजादी के निमित्त भारतीयों को इन्होने ही आगे बढ़ाया.....साहित्य राष्ट्र का नियामक है। यह समाज का सजग प्रहरी है। विपत्तिग्रस्त समाज को ऊपर उठाने का कार्य साहित्य सदा से करता आया है। इसमें ऐसी शक्ति निहित है कि यह सोये सिंह को जगाकर उसकी शक्ति को उद्बुद्ध कर देता है।"[15] रामधारीसिंह दिनकर जी राष्ट्रीय काव्यधारा के संबंध में कहते हैं कि "यह आंदोलन(राष्ट्रीय) विचित्र जादूगर बनकर आया था। जिधर को भी इसने एक मुट्ठी गुलाल फेंक दी, उधर का क्षितिज लाल हो गया। हिन्दी की राष्ट्रीय कविताएं जो अब तक उपदेशों और प्रवचनों का नीरस भार ढोती आयी थीं, इसी काल में आकर अनुभूतियों के सच्चे आलोक से

जगमगा उठीं और सीधे उपदेशों का आश्रय बनना छोड़कर उन्होंने अनुभूति के जोर से जनता का हृदय हिलाना शुरू कर दिया। राष्ट्रीय कविताएं भी प्रचार न होकर अनुभूतियों का जीवित कोष होती हैं, यह बात माखनलाल, नवीन और सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाओं को देखकर अनायास स्पष्ट हो जाती है।”[16]अत: माखनलाल चतुर्वेदी जी और दिनकर जी इन दोनों राष्ट्रकवियों ने तत्कालीन समाज पर होने वाले अत्याचार, राजनीतिक व्यभिचार, आर्थिक शोषण आदि के खिलाफ खुलकर विद्रोह किया है।

- **माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय स्वर**

स्वाधीनता संग्राम में जिन कवियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनमें ‘भारतीय आत्मा’ का उल्लेखनीय स्थान रहा है। पराधीन भारत की तत्कालीन परिस्थितियों ने पं. माखनलाल चतुर्वेदी को झकझोर दिया था। जिस समय माखनलाल चतुर्वेदी जी का साहित्य के क्षेत्र में आविर्भाव हुआ। उस समय राष्ट्र अंग्रेजों के अत्याचार, शोषण तथा दमघोंटू वातावरण में बुरी तरह फंसा हुआ था। देश की पीड़ा की अभिव्यक्ति और तत्कालीन परिस्थितियों को स्वर देने में कवि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। “उनका समस्त जीवन देशानुराग की एक लम्बी कहानी है। स्वातंत्र्य संग्राम के सेनानियों में जहाँ एक ओर उन्होंने अपनी अग्नि-वाणी से जोश की ज्वाला जागृत की वहां दूसरी ओर वे

स्वयं स्वतंत्रता संग्राम में सेनानी बनकर लड़े। उनका सहयोग क्रियात्मक और कलात्मक दोनों प्रकार का रहा है।"[17]पराधीन भारत को देख उनका मन व्यथित होने लगा था। भारत को स्वतंत्र करने की अभिलाषा में वे व्याकुल हो उठे। माखनलाल चतुर्वेदी जी एक ऐसे व्यक्तित्व थे। जिनके एक हाथ से कलम तो दूसरे से तलवार चलती थी। तलवार उनके क्रांतिकारी होने का प्रतीक है। कवि ने राष्ट्रहित के लिए राजनीति तथा सामाजिक चेतना से परिपूर्ण लेखन का सृजन किया। माखनलाल चतुर्वेदी जी तत्कालीन परिस्थितियों तथा समस्याओं को अपने काव्य के माध्यम से उभारकर सच का बयान करते हैं। समाज का जो दुःख और संघर्ष है, उसे यथार्थ रूप में हमारे सामने रखते हैं।

राष्ट्रीय आन्दोलन के उस दौर में माखनलाल चतुर्वेदी जी ने जिन कृतियों की रचना की। वे अत्यंत बहुमूल्य हैं। इस समय पूरे विश्व में परिवर्तन का दौर चल रहा था। गुलाम भारत को आजाद करने, क्रांतिकारियों तथा नौजवानों को स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करने तथा देश के नवनिर्माण में कवि की लेखनी ने बेजोड़ प्रयत्न किया। कवि स्वतंत्रता के लिए अपने काव्य के माध्यम से तरुणों और देशभक्तों को आजादी की लड़ाई के लिए प्रेरित करते हैं और तत्कालीन परिस्थिति को बदलने के लिए कहते हैं-

"द्वार बलि का खोल, चल भूडोल कर दे,

एक हिम-गिरि एक सिर का मोल कर दे,

मसल कर, अपने इरादों सी, उठा कर,

दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे?

रक्त है ? या है नसों में क्षुद्र पानी!

जांच कर, तू सीस दे दे कर जवानी?"[18]

राष्ट्र को प्रगति के पथ पर ले जाने के लिए गुलामी में जकड़ी, अन्धविश्वासी और रुढ़िवादी मान्यता से ग्रसित जनता की मुक्ति के लिए माखनलाल चतुर्वेदी जी ने महत्वपूर्ण काव्यों की रचना कर भारत को स्वाधीन करने में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। आजादी के बाद भी उनकी लेखनी चलती रही।

अंग्रेजों ने अपनी शोषण नीति का जो कुचक्र भारत की जनता पर चलाया। उसका प्रभाव राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों पर तथा सभी वर्गों पर पड़ा। इस समय विश्व महायुद्धों के दौर से गुजर रहा था। जब गांधीजी का राजनीति में आगमन होता है। इनसे माखनलाल चतुर्वेदी ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने पिस्तौल छोड़कर अहिंसा का रास्ता अपना लिया। यह उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है। माखनलाल जी का जीवन और काव्य दोनों राष्ट्र सेवा में समर्पित थे। वे राष्ट्रीय आन्दोलन में हिस्सा लेते रहे। सर्वप्रथम क्रांतिकारियों की सहायता करके और फिर गाँधी के अहिंसात्मक पथ को अपनाकर। कवि राष्ट्रीय आन्दोलन की तरफ आकर्षित होते हैं। जहाँ एक तरफ वे क्रांतिकारी तिलक जी से

प्रभावित हैं। अंग्रेजों के खिलाफ आजादी के लिए तिलक ने जो वीरता दिखलाई थी। उससे देश के युवाओं में आजादी की अभिलाषा तीव्र हो गयी और राष्ट्रीय चेतना का संचार प्रबल हुआ। देश में राष्ट्रीय वातावरण का निर्माण हुआ। कवि तिलक के व्यक्तितत्त्व से प्रभावित हुए। तिलक की मृत्यु पर कवि एकदम भावुक हो जाते हैं। उनका दु:खी मन कहता है-

"तेरी हुंकारों का फल था
अगणित वीरों ने प्राण दिया,
राष्ट्रीय शक्ति ने तुझसे ही
अमृतसर में था त्राण लिया।"[19]

महात्मा गाँधी जी द्वारा 1919 ई. में दिए गए भाषण से माखनलाल चतुर्वेदी जी विशेष रूप से प्रभावित हुए। तत्पश्चात कवि ने राष्ट्र प्रेम को नये स्वर और नये आवेश में गुंजित करना आरम्भ किया। उस समय त्याग, बलिदान, समर्पण और जागृति की उग्र इच्छा से मातृभूमि पर सर्वस्व न्यौछावर करने की दृढ़ आकांक्षा रखने वालों में 'एक भारतीय आत्मा' का स्थान सर्वोपरि रहा है। उन्होंने ये भावना केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखी, बल्कि अपनी वीर रस से भरी ओजपूर्ण कविता से समस्त देश में प्रत्येक जन-मन में ये भावनाएं भर दीं। कवि की राष्ट्रीय कविताओं में 'पुष्प की अभिलाषा' का यहाँ वर्णन न करना न्यायसंगत न होगा, क्योंकि इस कविता के कारण ही माखनलाल चतुर्वेदी जी चर्चित हुए। जिसमें एक फूल की चाह है कि वह भी देश के लिए बलिदान होकर

देश के काम आये। कवि अत्यंत सहज शब्दों में अपनी अभिलाषा को व्यक्त करते हैं-

"चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊं।
चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊं।
चाह नहीं, सम्राटों के शव पर, हे हरि डाला जाऊं
मुझे तोड़ लेना वन माली, उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।"[20]

कवि ने तत्कालीन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता, शोषण, भुखमरी, राजनीतिक नेताओं द्वारा की जाने वाली लूट और बेईमानी आदि कुरीतियों को अपने काव्य के माध्यम से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। कवि की राष्ट्रीय कविता का मूल स्वर बलिदान देना ही रहा है। माखनलाल चतुर्वेदी जी वैष्णव परिवार से थे। जब वे क्रांति के पथ पर थे तब सिर झुकाने में नहीं बल्कि सिर कटवाने में विश्वास रखते है। परन्तु गांधी जी के प्रभाव में आने के बाद उनकी बलिदान की भावना भी अहिंसक हो जाती है। वे अब भारत माँ के लिए 'मारो' नहीं 'बलि' हो जाने की भावना मन में रखते हैं। जिस तरह उन्होंने नई पीढ़ी को देश के लिए बलिदान होने के लिए कहा। वैसे ही देश के सेनानी (सिपाही) से राष्ट्र मुक्ति के लिए अपनी बलि देने के लिए आज्ञा मांगते हुए कहते हैं-

"खिलने से पहले टूटेंगी, तोड़, बता मत भेद,
वनमाली, अनुशासन की सूजी से अंतर छेद!

श्रम-सीकर प्रहार पर जीकर, बना लक्ष्य आराध्य,

मैं हूँ एक सिपाही, बलि है मेरा अंतिम साध्य।"[21]

अपनी विद्रोहात्मक लेखनी के कारण कवि कई बार राजद्रोह के आरोप में जेल भी गये। माखनलाल चतुर्वेदी जी ने जेल की यात्राओं के दौरान जिन कविताओं की रचना की। वे देशभक्ति से ओत-प्रोत हैं। राष्ट्रीय साहित्य की दृष्टि से इनकी रचनाएं साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। इस दौरान इन्होंने जिन कृतियों का सृजन किया, वे हैं- कैदी और कोकिला, झरना, आंसू, हिमकिरीटिनी, मेरा व्रत पूजन, उलझन, माता, बलिपंथी से, पर्वत की अभिलाषा आदि। इन कविताओं में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने की क्षमता है। गुलामी की वेदना उनके अन्दर विद्रोह की भावना को जन्म देती है-

"यदि जरा देख पाता था साहस मेरा

परदेसी घातक मित्र बना है तेरा

मैं प्राण चढ़ाकर तुझे तार देता था

पिस्तौल उठाता, और मार देता था ।"[22]

अंग्रेजों द्वारा जेल में देशभक्तों पर किये जा रहे अत्याचारों का वर्णन माखनलाल चतुर्वेदी जी अपनी प्रसिद्ध कविता 'कैदी और कोकिला' में इस प्रकार करते हैं-

"ऊँची काली दीवारों के घेरे में,

डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में,

जीने को देते नहीं पेट भर खाना,

मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना!

जीवन पर अब दिन-राट कड़ा पहरा है,

शासन है, या ताम का प्रभाव गहरा है?"[23]

1943 ई. में प्रकाशित चतुर्वेदी की हिमाकिरीटिनी काव्य-संग्रह भारत माँ का प्रतीक है। यह स्वतंत्रतापूर्व लिखा गया जिसमे कवि तरुणों को देश के लिए बलिदान होने के लिए प्रेरित करते हैं। इनमें महत्वपूर्ण है- कैदी और कोकिला, मरण-त्यौहार, तिलक, विद्रोह, सिपाही, नि:शस्त्र सेनानी, बलिपंथी से, आंसू, जवानी, अमर राष्ट्र, मरण-ज्वार तथा हिमकिरीटिनी। ऐसी कविताओं के माध्यम से कवि तरुणों में क्रांति का संचार करते हैं। "चतुर्वेदी जी की कविताओं में देशभक्ति का तत्व जितना स्वाभाविक है उतना आध्यात्मिक तत्व भी। किंतु रहस्य भावना के कारण जहाँ-तहाँ अभिव्यक्ति में जटिलता आ गई है। जहाँ उसमें सरलता है वहां लोकहृदय को आकर्षित करने की क्षमता है।"[24]

इनकी 'विद्रोह' नामक कविता में भी कवि का यही विद्रोह नजर आता है-

"ज्वाला जगी कि अपनी बलि, हम पहले देंगे प्यारे,

हम से ही बनते देखे, हैं दुनिया ने अंगारे,

मिट्टी में मिलना, हरियाना फिर होना अंगारे,

विद्रोही हैं- ये सब कुछ होते अवतार हमारे"[25]

समाज में साम्प्रदायिकता, जातीय-भेदभाव जैसी सामजिक विषमता को देख दुखी होते हैं और देशवाशियों से संगठित रहने के लिए आग्रह करते हैं-

"मजबूत कलेजों को लेकर,
इस न्यायदुर्ग पर चढ़ो, चलो,
माता के प्राण पुकार रहे,
संगठन करो, बस चढ़ो, चलो ।
वह धन लाओ, जीवन लाओ,
आओ, लाओ दृढ़ डोर लगे,
प्यारा स्वराज्य कुछ दूर नहीं,
बस तीस कोटि का जोर लगे।"[26]

गुलाम भारत माँ, जो अंग्रेजों की बेड़ियों में जकड़ी है। उसे कवि निस्सहाय द्रौपदी की उपमा देते हैं और कहते हैं-

"भारत-लक्ष्मी द्रुपद-सुता क्यों-
दु:शासन में दु:खित हो यों?
जन जानी,करुना की ठानी, साड़ी घंटी न, खींची तानी
त्यों ही देवेश, बढ़कर दृढ़तर भुजा उठे, कट जायँ कलेश।।"[27]

माखनलाल चतुर्वेदी जी ने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों को जो मानसिक और शारीरिक यंत्रणाएं दी जा रही थीं, उन सभी पीड़ाओं को प्रत्यक्ष रूप से देखा था। वे कई बार जेल भी गये

और गोरी हुकूमत द्वारा दी जाने वाली यातनाएं भी सहीं। उनके मन में एक ऐसी शक्ति का संचार होता था, जो उन यातनाओं को सहने में धैर्य और संतुलन बनाये रखती थी। रामाधार शर्मा जी कहते हैं- "कवि के लिए भीतर जो भगवान है वही बाहर देश है।"[28]

कवि जेल यात्रा को गौरव यात्रा मानते थे। इसलिए वे गर्व से कहते हैं-

"क्या?- देख ना सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियाँ क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना,
कोल्हू का चरक चूँ?-जीवन की तान,
मिट्टी पर अँगुलियों ने लिक्खे गान?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जुआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुआ।"[29]

अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ माखनलाल चतुर्वेदी जी के मन में असंतोष भरा हुआ था। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए इनके काव्य में सर्वत्र प्रचंड लालसा दिखाई देती है; जैसे- विद्रोह, गुलामी की वेदना को अभिव्यक्त करने की इच्छा, बलिदान, स्वतंत्रता आदि। इन सभी में उनकी लालसा है। वे स्वतंत्रता को प्रभु के रूप में देखते हैं और उसके समक्ष नवयुवकों को बलिदान होने के लिए प्रेरित करते हैं। राष्ट्र की नवयुवक शक्ति में जोश, उत्साह का संचार करते हुए, उसे देशोत्थान के लिए प्रेरित करते हैं। स्वतंत्रता की तीव्र अभिलाषा में कवि नौजवानों को उनकी 'जवानी' कविता के माध्यम से संबोधित करते हुए कहते हैं। यदि

तुम्हारा रक्त लाल नहीं है और मुख पर ओज नहीं है तो तुम भारत माँ के पुत्र नहीं। माखनलाल चतुर्वेदी जी के अनुसार जवानी का अर्थ है- मृत्यु को हँसते हुए गले लगाना। अन्यथा तुम्हारा जीवन निरर्थक है, धूल के समान है। कवि ललकारते हुए यह बात कहते हैं-

"लाल चेहरा है नहीं-फिर लाल किसके?

लाल खून नहीं? अरे, कंकाल किसके?

प्रेरणा सोयी कि आटा-दाल किसके?

सिर न चढ़ पाया कि छापा-माल किसके?

वेद की वाणी कि हो आकाश-वाणी,

धूल है जो जग नहीं पायी जवानी।"[30]

माखनलाल चतुर्वेदी जी राष्ट्रवादी थे। इसलिए जातिवाद को देश के लिए घातक मानते थे। स्वदेशी आन्दोलन पर भी इनके काव्य में वेदना पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। कवि को इस बात का दुःख हुआ कि समाज में एक ऐसा वर्ग भी था, जो विदेशीपन (विदेशी वस्तुओं) का कायल हो गया था। इस पर व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं-

"बूट चाहिए, सूट चाहिए, कालरहैट और नेकटाय

केन चाहिए, चेन चाहिए- घड़ी सहित फिर डेली चाय

देखो इन पर लिखा न होवे, कहीं 'मेड इन हिंदुस्तान।

क्योंकि हमीं तो हैं इस बूढ़े भारत के भावी विद्वान।"[31]

अंग्रेजों के खिलाफ जब जनता एकजुट होती है, तो उसे कोई नहीं रोक सकता स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कवि देशवाशियों को संगठन का महत्व समझाते हुए कहते हैं-

"मजबूत कलेजों को लेकर,
इस न्याय दुर्ग पर चढ़ो, चलो,
माता के प्राण पुकार रहे,
संगठन करो बस चढ़ो चलो।"[32]

आजादी के बाद भारतीय राजनीति में स्वार्थीपन, सत्ता के नशे में चूर नेता, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सांप्रदायिक दंगे आदि का जो दौर शुरू हुआ उसकी गूंज भी माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य में सुनाई देती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी कवि की लेखनी बंद नहीं हुई। सत्ता के नशे में चूर नेता स्वार्थी और पदलोलुप हो गये। राजनीति खंडित हो गयी, दुराचार बढ़ा। इस प्रसंग में कवि कहते हैं-

"अब दुःख की सौहें खाते हैं वे भीड़ों में
'भीड़ों' को संपर्क सिखाए जाते हैं,
बस सिर्फ रेडियो पर, यों बार-बार
गाँधी के गुण टेबल पर गाये जाते हैं ।"[33]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में जो साम्प्रदायिक दंगे हुए। कवि उसकी अवहेलना करते हैं। सर्वधर्मसमभाव की मनोकामना 'घर मेरा है?' कविता में दिखती है-

"हो मुकुट हिमालय पहनाता,

सागर जिसके पग धुलवाता,

यह बंधा बेड़ियों में मंदिर,

मस्जिद, गुरुद्वारा मेरा है!"[34]

स्वाधीन भारत के स्वदेशी शासकों पर भी वे करारी चोट करते हैं और स्वार्थी देशद्रोही और राजनेताओं को फटकारते हुए वे कहते हैं-

"अमर राष्ट्र, उद्दंड राष्ट्र,उन्मुक्त राष्ट्र

यह मेरी बोली!

यह 'सुधार' 'समझौतों' वाली

मुझको भाती नहीं ठठोली।

मैं ना सहूँगा- मुकुट और

सिंहासन ने वह मूछ मरोरी,

जाने दे, सिर लेकर मुझ को,

ले संभाल यह लोटा-डोरी!"[35]

कवि विदेशी शासकों द्वारा शोषित देश की जनता और ग्राम्य कृषकों की दुर्दशा का चित्रण अपने काव्य के माध्यम से करते हैं। किसान की दयनीय अवस्था का ज्ञान हमें चतुर्वेदी जी के काव्य से होता है । जमींदार, साहूकार और अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे शोषण और दुर्व्यवहार के प्रति आक्रोश प्रकट करते हुए कहते हैं-

"गाँव के चौपाल पर बैठे हुए कृषि बंधु प्यारे
कृषक के ढांचे रहे जो जोहते मेरे इशारे
और उनकी घरनियाँ, वे तरनियाँ दारिद्रय -नद की
खेत के मोती हमें देकर, जिलाते प्राण देकर,
हम उन्हें लौटा रहे क्या? कौन-सा सम्मान देकर।"[36]

निष्कर्षत: हमने देखा कि किस प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी जी ने स्वतंत्रता से पहले से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात तक अपने काव्य के माध्यम से तत्कालीन परिस्थतियों को हमारे सामने लाते रहे। कवि ने अपनी पत्नी के देहांत के बाद स्वयं को पूर्ण रूप से भारत माँ की सेवा में समर्पित कर दिया था। रामाधार शर्मा जी कहते हैं- "माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में भी देश की राजनीतिक सजगता का सुन्दर चित्र मिलता है। उनकी रचनाएं बड़ी प्राणवान और प्रभावपूर्ण हैं। इसके कारण हैं- एक तो राष्ट्रीय काव्य होने के नाते वे स्वभावतःही ओज से भरी हुई हैं, दूसरे स्वतंत्रता-संग्राम के सक्रिय सैनिक होने के नाते कवि ने राष्ट्र की गतिविधियों को अत्यंत निकट से या भीतर से देखा है। इसलिए उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में जो सजीवता और सप्राणता है और उनके स्वर में जो सच्चाई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी कविताएं एक भुक्त-भोगी की आत्म-कहानी प्रतीत होती है।"[37]कवि ने अपना सम्पूर्ण जीवन देश के लिए समर्पित कर दिया। उनकी अभिव्यक्ति के एक-एक शब्द में राष्ट्रीय चेतना की गूंज है। उन्होंने भारत के आदर्श, परम्परा, त्याग, बलिदान

और गांधी के अहिंसात्मक विचार को अपने काव्य में सरल भाषा में चित्रित किया। पंडित माखनलाल चतुर्वेदी जी द्वारा हिंदी साहित्य जगत को दिए जाने वाले इस अभूतपूर्व योगदान के लिए हमें उनका आभार मानना चाहिए, क्योंकि उनकी राष्ट्रीय कविताओं की रचना औपचारिकतावश नहीं लिखी गयी। उसमें कवि के निजी जीवन के अनुभव और तत्कालीन परिवेश की गूंज सुनाई देती है।

- **रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीय स्वर**

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौर में सबसे सशक्त और समर्थ रचनाधर्मी राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' जी को माना जाता है। दिनकर जी की रचनाओं की विशिष्टता यह रही है कि वे काव्य रचना तो परम्परागत विषयों को आधार बनाकर करते हैं। परन्तु समस्याएँ उनकी आधुनिक है। दिनकर जी के युग में देश पराधीनता के चंगुल में फंसा हुआ था। कवि ने जब काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। उस समय बिहार और बंगाल में उग्र दल के विचारों का साम्राज्य था। इस विद्रोही वातावरण को उन्होंने काव्य का रूप प्रदान किया। इस देशव्यापी संघर्ष ने दिनकर जी की भावनाओं को क्रांतिकारी रूप में परिवर्तित कर दिया। दिनकर जी तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया। उस समय सारा देश उत्साह से उच्छ्ल और दासता की

पीड़ा से बेचैन था। अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धड़ाके की आवाज आती, फांसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्द-भरी ऐंठन की आवाज सुनायी देती जो गांधी जी के हृदय में चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्र नायकों के हृदय में चल रही थी। जिनसे बढ़कर मैं किसी और को श्रद्धेय नहीं समझता था। मेरे जानते उस समय सारे देश में एक स्थिति थी जो सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी, सारे देश का एक कर्तव्य था जो स्वातंत्र्य-संग्राम को सबल बनाने का कर्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मजबूरियों से बेचैन थी।"[38] इस कथन से यह पता चलता है कि एक तरफ कवि महात्मा गाँधी जी के विचारों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे तो दूसरी तरफ वे उग्रदल के विचारों से भी प्रभावित थे। समसामयिक भारत की दुर्दशापूर्ण परिस्थितियां दिनकर जी को झकझोरने लगीं। देश को अंग्रेजों की गुलामी में जकड़ा देख उनका मन व्यथित होने लगा था। स्वतंत्रता की अभिलाषा ने उनको व्याकुल कर दिया था। ऐसे में दिनकर जी जैसे सचेत कवि परिस्थितियों से मुंह कैसे फेर सकते थे। "इन्हीं परिस्थितियों के फलस्वरूप यह 'धरती पुत्र' समय का पुत्र बन गया जिसने अपने जीवन का सबसे बड़ा कार्य यह समझा कि वह अपने युग के क्रोध और आक्रोश को अधीरता और बेचैनियों को सबलता के साथ छंदों में बांधकर सबके सामने उपस्थित कर दे।"[39] दिनकर जी ने राष्ट्र के

हित के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना से परिपूर्ण लेखन का सृजन किया। दिनकर जी के मन में ऐसी अनुभूति और भावना का प्रस्फुटन तत्कालीन परिवेश से प्रभावित होकर ही होता है। वे समसामयिक परिस्थितियों को साहित्य के माध्यम से उभारकर समस्याओं के सच का बयान करते हैं। व्यक्ति का जो दुःख और संघर्ष होता है, उसके यथार्थ रूप को हमारे सामने रखता है। यह दिनकर की स्वयं की अनुभूति है इसलिए वे कहते हैं, "प्रत्येक काल अपने कवि की प्रतीक्षा करता है, क्योंकि काल के हृदय में दर्द और बेचैनी की जो रागिनी बजती है, वह औसत लोगों को सुनायी नहीं देती, केवल कवि ही उसे सुन सकता है। काल अपने कवि की प्रतीक्षा केवल इसलिए करता है कि कवि उसकी मूक-से-मूक भावनाओं को भी अभिव्यक्ति दे देता है। वैज्ञानिक, दार्शनिक और समाजशास्त्री काल की जिस गुह्य भावना को नहीं समझ सकते, उसी भावना को अभिव्यक्ति देने के कारण कवि अपने युग का प्रतिनिधि समझा जाता है। युग कवि के आगमन के साथ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि काल विशेष की अनुभूतियों में कौन से विकार अथवा परिवर्तन हुए हैं।"[40] इसीलिए कवि ने स्वयं को समय का पुत्र भी कहा है।

स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन के उस दौर में उनके द्वारा लिखी गयी रचनाएं अत्यंत बहुमूल्य हैं। उनकी आरंभिक काव्य रचनाओं में छायावादी युगीन काव्य संस्कार दिखायी देते हैं। दिनकर जी कहते हैं कि,

"रेणुका को देख कर भी, जहाँ से मेरे साहित्यिक जीवन का सुनिश्चित आरम्भ होता है कोई यह नहीं कह सकता था कि राष्ट्रीयता मेरे कविताओं का प्रधान गुण होने जा रही थी 'रेणुका' में राष्ट्रीय भावधारा को व्यक्त करने वाली दो-तीन ही रचनाएं हैं। बाकी उस संग्रह में ऐसी ही रचनाओं का प्राधान्य है, जिनमें या तो भारत के अतीत का रोना है या जीवन की नश्वरता पर विलाप। और ये दोनों गुण छायावादी संस्कार से आये थे।"[41]

दिनकर जी में बचपन से ही काव्य रचना की असाधारण प्रतिभा थी। इन्होंने छोटी उम्र में ही 'तिलक' की मृत्यु पर माखनलाल चतुर्वेदी जी द्‌वारा रची एक कविता पढ़ी थी। जिसने इन्हें प्रभावित किया। "जब मैं आठ-दस साल का रहा होऊंगा। तब सन 1920 ई. में कानपुर के प्रताप में 'एक भारतीय आत्मा' की वह कविता छपी जिसे उन्होंने लोकमान्य तिलक की मृत्यु पर लिखा था। इस कविता का मुझ पर अत्यंत प्रभाव पड़ा। वह कविता तो मुझे दूसरे ही दिन कंठस्थ हो गयी, अब मैं पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ ढूँढ़ -ढूँढ़ कर पढ़ने लगा।"[42] इससे यह ज्ञात होता है कि 1920 ई. का युग अर्थात् असहयोग का युग चल रहा था और दूसरा यह कि दिनकर जी को देश की स्थिति जानने और राष्ट्रीय काव्य पढ़ने की उत्सुकता उन्हें राष्ट्रकवि बनने की राह पर ले जा रही थी।

दिनकर जी का जन्म जिस समय हुआ था। उस समय सम्पूर्ण विश्व में एक परिवर्तन दिखायी दे रहा था। इन्होंने अपनी लेखनी द्वारा माँ भारती के नवनिर्माण में अथक प्रयत्न किया। समाज की सड़ी-गली मान्यताएं किस प्रकार राष्ट्र के विकास में बाधा डालती हैं, उसका यथार्थ चित्रण उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखायी देता है तथा उनकी रचनाओं में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की अनुगूँज सुनाई देती है। राष्ट्र की प्रगति के लिए, गुलामी में जकड़ी जनता तथा अन्धविश्वासी और रुढ़िवादी मान्यता से ग्रसित जनता की मुक्ति के लिए दिनकर ने महत्वपूर्ण काव्यों की रचना कर समाज को नई दिशा प्रदान की।

दिनकर जी उन समस्त राष्ट्रीय भावनाओं के प्रतिनिधि कवि रहे हैं, जो सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जागरण के दृष्टिकोण से भारतीय युवावर्ग के निराश हृदय में देशभक्ति की उमंग भर सशक्त राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। कवि स्वयं कहते हैं कि- "ज्यों-ज्यों मेरी कविताएँ जन समुदाय को आंदोलित करती गईं, मेरा यह आत्म-विश्वास जोर पकड़ता गया कि मैं समय का पुत्र हूँ और मेरा सबसे बड़ा कार्य यह है कि मैं अपने युग के क्रोध और आक्रोश को, अधीरता और बेचैनियों को सबलता के साथ छंदों में बाँध कर सबके सामने उपस्थित कर दूँ। मेरे पीछे और मेरे चारों और भारतीय मानवता खड़ी थी, जो पराधीनता के पाश से छूटने को बेचैन थी।"[43]

सर्वप्रथम उनकी कविताओं को बेगूसराय से छपने वाली पत्रिका 'प्रकाश' में जगह मिली। दिनकर ने अपनी कविताओं से चारों दिशाओं को प्रकाशित किया। 'विजय सन्देश' नामक पुस्तक में कुछ गीत लिखे थे, जो गुजरात के बारडोली सत्याग्रह की कामयाबी के बाद लिखे गये थे। "दिनकर की रचना का प्रथम विस्फोट भी स्वातंत्र्य युद्ध से ही हुआ। 20वीं शताब्दी में जो भारतीय संस्कृति, राजनीतिक नवजागरण के कारण हुआ। 1928 में दिनकर की पहली काव्य पुस्तक 'विजय-सन्देश' निकली जिसे भ्रमवश लोग 'बारडोली विजय' कहते रहे।"[44] यह युग स्वतंत्रता संग्राम का निर्णायक युग था। यही गीत पुन: 'छात्र सहोदर' नामक पत्रिका में छपे। इसके बाद दिनकर को लोग प्रभावशाली कवि के रूप में जानने लगे। रामधारी सिंह दिनकर जी आधुनिक हिंदी कविता के सिद्धहस्त और सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनके काव्य में जनजीवन के सभी पक्षों का प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। युग चेतना उनके काव्य की विशेषता है। कवि ने निर्भीक होकर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक इन सभी क्षेत्रों में अपनी वाणी के माध्यम से अपनी विचारधारा व्यक्त की है।

दिनकर जी के काव्य का राष्ट्रीय स्वर, राष्ट्रीय स्तर से अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक विकसित होता है। 1935 ई. में प्रकाशित दिनकर जी के 'रेणुका' काव्य संग्रह से उनकी राष्ट्रीय चेतना से युक्त रचनाओं का प्रकाशन शुरू होता है। दिनकर अपने भारत देश की संस्कृति, समृद्धि तथा भौगौलिक विशेषता का चित्रण अपने काव्य में इस प्रकार करते हैं-

"सुखसिंधु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिय-धार
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार"[45]

कवि परतंत्र देश की जनता में छिपी चिंगारी को देख सकते हैं-

"तू तरुण देश से पूछ अरे,
गूंजा यह कैसा ध्वंस-राग
अम्बुधि-अन्तस्तल-बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग ?"[46]

राजनीति में यह युग जहाँ एक ओर गांधी के अहिंसा मार्ग का अनुसरण कर रहा था, तो दूसरी तरफ देश के क्रांतिकारी, आज़ादी के लिए गांधी के अहिंसात्मक विचारों को चुनौती दे रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों में दिनकर जी ने गाँधी के अहिंसात्मक विचारों का समर्थन न करते हुए 'हिमालय' (1933) नामक कविता की रचना की, जिसमें हिमालय का मानवीकरण कर देश की जनता को संबोधित किया है। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"जिसके द्वारों पर खड़ा क्रांत

सीमापति! तू ने की पुकार,

'पद-दलित इसे करना पीछे

पहले ले मेरा सिर उतार।

उस पुण्यभूमि पर आज तपी!

रे, आन पड़ा संकट कराल,

व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे

डंस रहे चतुर्दिक विविध व्याल।

मेरे नगपति ! मेरे विशाल!"[47]

इसी कविता में कवि देश के नौजवानों को गुलामी की जंजीर तोड़ आजाद होने के लिए ललकारते हुए कहते हैं-

"ले अंगडाई, उठ, हिले धरा, कर निज विराट स्वर में निनाद,

तू शैलराट! हुंकार भरे, फट जाय कुहा, भागे प्रसाद।

तू मौन त्याग कर सिंघनाद, रे तपी! आज तप का न काल।

नव-युग-शंखध्वानि जगा रही, तू जाग, जाग, मेरे विशाल!"[48]

'रेणुका' की अन्य कविताएँ जैसे- 'तांडव', 'कस्मै देवाय', 'समाधि के प्रदीप', 'विधवा', 'वैभव की समाधि पर' आदि कविताओं में इस युग की तथा पराधीन भारत की वेदना की अभिव्यक्ति मिलती है। "1919 में सिमरिया पर घोर अकाल और महामारी का प्रकोप साथ-साथ हुआ। लाल

बुखार से लगभग डेढ़ सौ व्यक्तियों की मृत्यु हुई। राजनीतिक और सामाजिक शोषण का भी उस गाँव में बोलबाला था। गाँव में कई बाहरी लोगों की जमींदारी थी। उनके कर्मचारी सिमरिया के किसानों के साथ बड़ी निर्दयता और नृशंसता का व्यवहार करते थे।"[49] दिनकर जी को किसानों के दुःख का एहसास था क्योंकि उन्होंने उनकी बेबसी और दीनहीन परिस्थिति का मंजर अपनी आँखों से देखा था। इसलिए जब किसानों द्वारा चलाए गए आन्दोलनों को अंग्रेजों ने उनके साथ अमानवीय व्यवहार कर दबाया और उनका आर्थिक शोषण किया। तब दिनकर जी से रहा नहीं गया। 'कस्मै देवाय' में कवि राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले सांप्रदायिक दंगे, किसान आन्दोलन, ब्रिटिशों द्वारा किये जाने वाले आर्थिक शोषण की नीति का वर्णन करते हैं। उन्होंने क्रांति की देवी माँ भवानी का आह्वान इस प्रकार किया-

"देख, कलेजा फाड़ कृषक, दे रहे हृदय-शोषित की धारें,
बनती ही उन पर जाती है, वैभव की ऊँची दीवारें,
धन-पिशाच के कृषक-मेध में नाच रही पशुता मतवाली,
आगंतुक पीते जाते हैं दीनों की शोणित की प्याली,
उठ भूषण की भाव-रंगिणी, लेनिन के दिल की चिंगारी,
युग मर्दित यौवन की ज्वाला, जाग-जाग री क्रांति-कुमारी।"[50]

दिनकर जी जब चारों ओर विदेशियों द्वारा किये जा रहे असीमित दमन को देखते हैं। तब वे 'तांडव' कविता की रचना करते हैं और भगवान शिव से अनुरोध करते हैं कि वह पूरी सृष्टि को नष्ट कर दे-

"नचे तीव्रगति भूमि कील पर,
अट्टहास कर उठें धराधर,
उपटे अनल, फटे ज्वालामुख,
गरजे उथल-पुथल कर सागर।
गिरे दुर्ग जड़ता का, ऐसा प्रलय बुला दो प्रलयंकर!
नाचो, हे नाचो, नटवर!
प्रभु! तव पावन नील गगन-तल,
विदलित अमित निरीह-निबल-दल,
मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र-जन,
असहायों का शोणित-शोषण।
पूछो, साक्ष्य करेंगे निश्चय, नभ के ग्रह-नक्षत्र-निकर!
नाचो, हे नाचो, नटवर!"[51]

'रेणुका' के बाद 'हुंकार' काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। "हुंकार सन् 1935-45 तक भारतीय क्षितिज पर छायी राजनीतिक वातावरण का उद्दाम चित्र है। पराधीन भारत की वेदना, कुंठा, दीनता, सभी कुछ इसमें साकार हो उठी है।"[52]इस युग में जहाँ गांधी जी के नेतृत्व में आजादी के लिए आन्दोलन हो रहे थे। वहीं क्रांतिकारियों का दल भी पूरे देश में गुप्त

रूप से सक्रिय था। नेहरू कमेटी की नियुक्ति, भगत सिंह द्वारा असेम्बली पर बम फेंकना, नमक सत्याग्रह गांधी इरविन समझौता आदि महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुईं। कुल मिलाकर ब्रिटिश सरकार पूरे देश में आतंक फैला रही थी।

इन तत्कालीन परिस्थितियों का नाश कर कवि देश का नवनिर्माण करना चाहते हैं। वे सभी कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाते हैं। उनकी क्रांतिकारी चेतना काव्य में प्रकट होती दिखायी देती है। कवि देश की स्वतंत्रता के लिए क्रान्ति की देवी माँ भवानी का आह्वाहन करते हैं -

“हाँ, भारत की लाल भवानी,
जवा-कुसुम के हारोंवाली,
शिव, रक्त-रोहित-वासना,
कबरी में लाल सितारों वाली।
कर में लिए त्रिशूल, कमंडल,
दिव्या-शोभिनी, सुरसरि-स्नाता,
राजनीति की अचल स्वामिनी,
साम्य-धर्म-ध्वज-धर-की माता।”[53]

स्वतंत्रता के लिए बेचैन देशवासियों में जो व्याकुलता, विद्रोह और आक्रोश था, उसे दिनकर जी ने हुंकार काव्य संग्रह में अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। यहाँ कवि आजादी के लिए भारतीय नवयुवकों का उत्साहवर्धन करते हुए कहते हैं-

"जागरूक की जय निश्चित है, हार चुके सोने वाले ;
लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिक होने वाले!
ओ मदहोश! बुरा फल है शूरों के शोणित पीने का;
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन-गिन मोल पसीने का।
कल होगा इन्साफ, यहाँ किसने क्या किस्मत पायी है;
अभी नींद से जाग रहा युग, यह पहली अंगड़ाई है।"[54]

"1943 ई. से लेकर 1945 ई. तक भारतीय जनता को अनेक कठिनाइयों और कुंठाओं का सामना करना पड़ा। सरकार के संरक्षण में चलती हुई चोरबाजारी और भ्रष्टाचार से साधारण जनता पीड़ित थी।"[55] समाज में व्याप्त कुरीतियों व शोषण के प्रति कवि का रोष यहाँ दिखायी देता है-

"रस्सों से कसे जवान पाप-प्रतिकार ना जब कर पाते हैं,
बहनों की लुटती लाज देख कर काँप-काँप रह जाते हैं,
शस्त्रों के भय से जब निरस्त्र आँसू भी नहीं बहाते हैं,
पी अपमानों के गरल-घूँट शासित जब ओंठ चबाते हैं,
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म-लगन।"[56]

इसी कविता की अन्य पंक्ति इस प्रकार है-

"श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच जब व्याज चुकाए जाते हैं,

मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,

पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण।"[57]

पूंजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग के शोषण का चित्रण भी कवि ने किया है। मजदूर और किसान का बच्चा जब दूध के लिए रोता है तो कवि उसे देख अत्यंत भावुक हो जाते हैं और आंसू बहाते हुए कहते हैं-

"ऋण-शोधन के लिए दूध-घी बेच-बेच धन जोड़ेंगे,

बूंद-बूंद बेचेंगे, अपने लिए नहीं कुछ छोड़ेंगे।

शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उनको बहलाएगी,

मैं फाड़ूँगा हृदय, लाज से आँख नहीं रो पायेंगी।

इतने पर भी धन-पतियों की उन पर होगी मार,

तब मैं बरसूँगी बन बेबस के आँसू सुकुमार।

फटेगा भू का हृदय कठोर। चलो कवि! वनफूलों की ओर।"[58]

'हाहाकार' कविता में भी कवि किसान की दर्द-भरी जिन्दगी का यथार्थ वर्णन करते हुए दिखाई देते हैं-

"बैलों के ये बंधु वर्ष भर, क्या जानें, कैसे जीते हैं ?

बंधी जीभ, आँखें विषण्ण, गम खा, शायद, आंसू पीते हैं!

पर, शिशु का क्या हाल, सीख पाया न अभी जो आंसू पीना?

चूस-चूस सूखा स्तन माँ का सो जाता रो-विलप नगीना।

विवश देखती माँ, अंचल से नन्हीं जान तड़प उड़ जाती;

अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती।

कब्र-कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है;

'दूध, दूध!' की कदम-कदम पर सारी रात सदा होती है।

'दूध, दूध!' ओ वत्स! मंदिरों में बहरे पाषाण यहाँ है;

'दूध, दूध!' तारे, बोलो, इन बच्चों के भगवान् कहाँ हैं?"[59]

स्वदेशी आन्दोलन के दौरान जब अंग्रेजों का व्यापार डांवाडोल होने लगा तब उसने बंदूकों और किरिच के द्वारा रक्तपात और दमन करना शुरू किया। इस शोषण का चित्रण-

"शुभ्र वसन वाणिज्य-न्याय का

आज रुधिर से लाल हुआ है,

किरिच-नोक पर अवलंबित

व्यापार जगत बेहाल हुआ है।"[60]

अंग्रेजी साम्राज्य के खिलाफ जब जनता एकजुट होती है, तो उसे कोई नहीं रोक सकता। एकजुट जनता में इतनी ताकत है कि वह काल का रूप धारण कर लेती है और जिधर वह चाहे काल को मुड़ना पड़ता है-

"हुंकारों से महलों की नींद उखड़ जाती है,

सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है,

जनता की रोके राह समय में ताब कहाँ?

वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है।"[61]

जब अंग्रेजों का अत्याचार बढ़ गया था। उस समय जनता को एक मार्गदर्शक की जरुरत थी, जो उसका सही मार्गदर्शन करे। वह कार्य दिनकर ने किया। जनता को अंग्रेजों के खिलाफ करने वाले आंदोलनों के लिए प्रेरित करते हुए क्रांति को पुकारते हैं-

"युगों से हम अन्य का भार ढोते आ रहे हैं,

न बोली तू, मगर, हम रोज मिटते जा रहे हैं,

पिलाने को कहाँ से रक्त लायें दानवों को?

नहीं क्या स्वत्व है प्रतिकार का हम मानवों को?"[62]

दिनकर जी का जन्म बिहार के सिमरिया गाँव में हुआ था। "सिमरिया गरीब किसानों का गाँव था। वहां अक्सर अकाल पड़ता था। वास्तव में दिनकर की कविता में अत्याचार, अनाचार, शोषण और सामजिक वैषम्य के प्रति जो विद्रोह का भाव व्यक्त हुआ है, उसकी प्रेरणा के बीज सिमरिया की शोषित, पीड़ित, निर्धन जनता के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं में विद्यमान है। वहां के लोगों को भूख से बेहाल देखकर उनके नेत्र आंसुओं से और हृदय आक्रोश से भर जाता था।"[63] कवि नवयुवकों को समाज की नींव का आधार मानते हैं इसलिए वे नौजवानों में क्रान्ति का संचार कर उनसे नये समाज का निर्माण करना चाहते हैं -

"स्वर को कराल हुंकार बना देता हूँ ,

यौवन को भीषण ज्वार बना देता हूँ।

शूरों के दृग अंगार बना देता हूँ,

हिम्मत को ही तलवार बना देता हूँ।

लोहू में देता हूँ वह तेज रवानी,

जूझती पहाड़ों से हो अभय जवानी।

मस्तक में भर अभिमान दिया करता हूँ,

पतनोन्मुख को उत्थान दिया करता हूँ।"[64]

कवि चाहते हैं कि समाज सुख, शान्ति, समृद्धि, समानता और बंधुत्व आदि उदात्त आदर्शों से पूर्ण हो। ऐसे समाज की दिनकर कामना करते हैं और फिर से देश के नौजवान को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित करते हैं। 1944 ई. में रचित 'जवानी का झंडा' कविता की कुछ पंक्तियाँ-

"गरज कर बता सबको, मारे किसी के

मरेगा नहीं हिन्द-देश,

लहू की नदी तैर कर आ गया है,

कहीं से कहीं हिन्द-देश!

लड़ाई के मैदान में चल रहे लेके

हम उसका उड़ता निशाँ,

खड़ा हो, जवानी का झंडा उठा,

ओ मेरे देश के नौजवान!"[65]

भारत पर जब संकट के बादल छाये हुए थे। तब "गांधी की नीति इस समय केवल युद्ध-विरोधी नारे लगा-लगा कर विरोध प्रदर्शन करना था, कार्य करना नहीं। सत्याग्रहियों को यह ध्यान रखना पड़ता था कि वे कोई ऐसा कार्य ना करें, जिससे सरकार की शक्ति को हानि पहुँचे। लेकिन सरकार की नीति दमन की ही रही। 31 अक्तूबर प. नेहरू को 4 साल का सश्रम कारावास दंड मिला। सरकार के इस कार्य से सारे देश में उत्तेजना और क्रोध की लहर फ़ैल गई ।"[66] दिनकर जी ने देशवासियों की घुटन का इस प्रकार चित्रण किया है-

"सुलगती नहीं यज्ञ की आग,
दिशा धूमिल, यजमान अधीर ;
पुरोधा-कवि कोई है यहाँ ?
देश को दे ज्वाला के तीर।
धुओं में किसी वह्नि का आज निमंत्रण लाता है कोई।"[67]

'मंजिल दूर नहीं है' में शोषित और पीड़ित जनता के मन में आशा के दीपक जलाने तथा उन्हें आश्वाशन देने का कार्य कर रहे थे।

'आग की भीख' में सन 1942 ई. के भयंकर दमन और अत्याचार का चित्रण है-

"धुँधली हुईं दिशाएँ, छाने लगा कुहासा,
कुचली हुई शिखा से आने लगा धुआँ-सा।

कोई मुझे बता दे, क्या आज हो रहा है?

दाता, पुकार मेरी, संदीप्ति को जिला दे;

बुझती हुई शिखा को संजीवनी पिला दे।

प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ।

चढ़ती जवानियों का श्रृंगार माँगता हूँ।"[68]

'जवानी का झंडा' तथा 'जवानी' आदि कविताओं में देश के जिस तेज को कुचल डाला। उसी तेज को दिनकर फिर से भगवान् से मांगते हैं। अपनी 'आह्वान' कविता के माध्यम से वे कहते हैं-

"आ, इस उजड़े-से उपवन में

मेघपरी मतवाली, आ।

आ, मेरे उदास नभ पर

संध्या की हल्की लाली, आ।

आ, मेरे इस अंधकारमय

जग में राकापति सुकुमार!

आ, अपने प्यारे अतीत की-

याद दिलाने वाली, आ।

बरस रही आँखें जीवन में

वर्षा ऋतु लाने वाली!

आ, जा, अरी, व्यथित उर

के घावों की प्यारी, हरियाली।"[69]

'सरहद के पार', 'फलेगी डालों में तलवार' कविताओं में कवि आजाद हिन्द सेना के जवानों के बलिदान व शौर्य का चित्रण ही नहीं करते बल्कि जनता में क्रांति का संचार भी करते हैं। एक सिपाही के माध्यम से कहते हैं-

"यह झंडा, जिसको मुर्दे की मुट्ठी जकड़ रही है,
छिन न जाय, इस भय से अब भी कस कर पकड़ रही है ;
थामों इसे ; शपथ लो, बलि का कोई क्रम न रुकेगा,
चाहे जो हो जाए, मगर , यह झंडा नहीं झुकेगा।"[70]

'भारत छोड़ो' आन्दोलन का नारा 1942 ई. में दिया गया। उस समय रूस के इशारे पर चलने वाले, देश के साम्यवादियों ने, कांग्रेस का साथ न देकर अंग्रेजों का साथ दिया। कई राष्ट्रीय नेताओं को बंदी बनाया गया। देश की इसी व्यथा को दिनकर ने 'दिल्ली और मास्को' में अभिव्यक्त किया है-

"एक देश है जहाँ विषमता
से अच्छी हो रही गुलामी,
जहाँ मनुज पहले स्वतंत्रता
से हो रहा साम्य का कामी।
भ्रमित ज्ञान से जहां जांच हो रही दीप्त स्वातंत्र्य-समर की,
जहां मनुज है पूज रहा जग को,

विसार सुधि अपने घर की।"[71]

एक बार जब उत्तर बिहार में महामारी फैली हुई थी उस समय पूज्य राजेंद्र प्रसाद की रिहाई के लिए आन्दोलन किया गया था। इस पर दिनकर जी को क्रोध आ गया और उन्होंने 'पटना जेल की दीवार से'(1945ई.) कविता रची-

"मिली ना जिनको राह, वेग वे विद्युत् बन आते हैं,

बहें नहीं जो अश्रु, वही अंगारे बन जाते हैं।

मानवेन्द्र राजेन्द्र हमारा अहंकार है, बल है,

तप:पूत आलोक, देश-माता का खड्ग प्रबल है।

जिस दिन होगी कड़ी तान कर भृकुटि भारत-रानी

खड्ग उगल देना होगा ओ पिशाचिनी दीवानी!

घड़ी मुक्ति की नहीं टलेगी कभी किसी के ताले,

शाप दे गये तुम्हें, किंतु, मिथिला के मरने वाले।"[72]

दिनकर जी का जन्म स्थल "सिमरिया स्वतंत्रता संग्राम का सक्रिय थियेटर रहा है। नमक सत्याग्रह और अगस्त क्रांति में गाँव के किसानों का साम्राज्य विरोध चरम पर था। ब्रिटिश राज ने यहाँ का एक हजार एकड़ खेत रेल निर्माण के नाम पर छीन लिया था। 1942 ई. की क्रांति में ग्रामीण जीवन ने न केवल अवध, तिरहुत, रेलपुल को ध्वस्त कर

दिया। कई जेल गये। कई भूमिगत हुए। जिस साल दिनकर का जन्म हुआ। खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चन्द्र चाकी ने इस मार्ग को अपने रक्त से सींचा था। दिनकर जी के क्रांतिकारी राष्ट्रवाद एवं किसान चेतना का एक मजबूत सिरा सिमरिया में है ।"[73]

द्वितीय विश्व युद्ध के समय जब तानाशाही हिटलर ने पूरे संसार को विश्व युद्ध में धकेलना चाहा तो दिनकर जी ने उस तानाशाह हिटलर पर भी प्रहार किया-

"चोट पड़ी भूमध्य-सिन्धु में, नील-तटी में शोर हुआ;
मर्कट चढ़े कोट पर देखो, उठो, 'सिलासी'! भोर हुआ।
हुआ विधाता वाम, 'जिनेवा'-बीच सुधी चकराते हैं;
बुझा रहे ज्वाला साँसों से, कर से आंच लगाते हैं!
'राइन-तट पर खिली सभ्यता, 'हिटलर' खड़ा कौन बोले?
सस्ता खून यहूदी का है, 'नाजी'! निज 'स्वस्तिक' धो ले।"[74]

दिनकर जी चारों तरफ अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे राजनीतिक दमन, शोषण और अत्याचार की ओर दृष्टि डालते हैं और शोषित वर्ग की शांति की हंसी उड़ाते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि जनता अंग्रेजों के अत्याचार को सहना अपना नसीब समझती है अर्थात् भारतीयों द्वारा त्याग का आदर्श अपनाते देख कवि उन्हें क्रांति का पाठ पढ़ाते हैं-

"टांक रही सुई चर्म, पर, शांत रहें हम, तनिक ना डोलें,

यही शांति, गर्दन कटती हो, पर हम अपनी जीभ न खोलें?

बोलें कुछ मत क्षुधित, रोटियां श्वान छीन खाएं यदि कर से,

यही शांति, जब वे आयें, हम निकल जायं चुपके निज घर से?"[75]

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच जब झड़प हुई। तब पूरे देश में साम्प्रदायिक दंगे फैलने लगे। हिंदू और मुस्लिम दोनों एक-दूसरे के दुश्मन हो गए। जब अपने ही दूसरों (अंग्रेज) की बातों में आकर आपस में झगड़ें तो इससे शर्मनाक और क्या हो सकता। वे कहते हैं-

"खून ! खूँ की प्यास, तो जाकर पियो,

जालिमों अपने हृदय का खून ही,

मर चुकी तक़दीर हिंदुस्तान की,

शेष इसमें एक बूँद लहू नहीं।"[76]

ब्रिटिशों की 'फूट डालो, शासन करो' की नीति के अंतर्गत हिंदू-मुसलमान बंटवारे के साथ-साथ हिन्दुओं में भी बंटवारा हुआ। शोषित वर्ग के नाम पर यह बंटवारा हुआ। "साम्प्रदायिकता 'अवार्ड' के द्वारा भारत की जनता को विभाजित करके अपनी सत्ता बनाए रखने की सरकारी नीति से गांधी जी का ध्यान अस्पृश्यों की ओर गया, जिन्हें हिन्दुओं से पृथक कर दिया गया था, इस प्रकार अछूतों की समस्या अब सामाजिक समस्या न रह कर राजनीतिक समस्या बन गई थी।"[77] यह ब्रिटिशों का षडयंत्र था। जिससे भारत खंडित हो गया। इससे पूरे भारत में सांप्रदायिक दंगे हुए।

दिनकर जी पर इसका प्रभाव पड़ा। उनकी ‘बोधिसत्व’ कविता की यही पृष्टभूमि है। धर्म के नाम पर एक-दूसरे से घृणा करना और निर्वाण प्राप्ति की इच्छा रखना आदि की निंदा करते हुए व्यंग्य करते हैं-

“पर, गुलाब-जल में गरीब के अश्रु राम क्या पायेंगे?
बिना नहाये इस जल में क्या नारायण कहलायेंगे?
मनुज-मेध के पोषक दानव आज निपट निर्द्वंद हुए;
कैसे बचें दीन? प्रभु भी धनियों के गृह में बंद हुए।
अनाचार का तीव्र आंच में अपमानित अकुलाते हैं,
जागो बोधिसत्व! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं।
जागो विप्लव के वाक्! दम्भियों के इन अत्याचारों से,
जागो, हे जागो, तप निधान! दलितों के हाहाकारों से।”[78]

हिंदु और मुसलमानों के इस बंटवारे के कारण दिनकर जी बहुत दुखी हुए। वे ‘तक़दीर का बंटवारा’ कविता में कहते हैं-

“मुस्लिमों! तुम चाहते जिसकी जबाँ,
उस गरीबिन ने जबाँ खोली कभी?
हिन्दुओं! बोलो तुम्हारी याद में
कौम की तक़दीर क्या बोली कभी?
छेड़ता आया ज़माना, पर कभी
कौम ने मुँह खोलना सीखा नहीं।

जल गयी दुनिया हमारे सामने,

किंतु, हमने बोलना सीखा नहीं।"[79]

दिनकर जी की एक कविता है 'आग की भीख'(1943 ई.) इसमें कवि भारतीय जनता के आक्रोश का चित्रण करते हैं। इस कविता की पृष्ठभूमि के समय देश में सन 1942 ई. की अगस्त क्रांति आन्दोलन का समय था। आन्दोलन का जैसे- जैसे एक-एक दिन बढ़ रहा था। वैसे-वैसे अंग्रेजों के अत्याचारों के खिलाफ भारतीयों में आक्रोश बढ़ता जा रहा था। 1946 ई. में लिखी कविता 'मंजिल अभी दूर नहीं है' में, जनता, जो स्वतंत्रता के लिए आशा लिए बैठी बेचैन थी। उन्हें दिनकर सांत्वना देने का प्रयास करते हैं। वैसे ही तत्कालीन समय की आग उगलती अन्य रचनाएं हैं- 'जवानियाँ'(1944 ई.), 'जवानी का झंडा'(1944 ई.)इत्यादि। 'सरहद के पार'(1945 ई.) नामक कविता में एक साधारण सैनिक के माध्यम से जनता में क्रांति का संचार करते हैं-

"थामो इसे, शपथ लो, बलि का कोई क्रम ना रुकेगा,

चाहे जो हो जाए, मगर, यह झंडा नहीं झुकेगा।

इस झंडे में शान चमकती है मरने वालों की,

भीमकाय पर्वत से मुट्ठी भर लड़ने वालों की,

नीचे ध्वनित हुआ आजाद हिन्द का नारा,

वही देश भर के लोहू की यहाँ एक हो धारा।"[80]

राष्ट्रपिता होने के नाते गाँधी जी के प्रति जनता कितनी ही आस्थावान क्यों न हो परन्तु निजी स्तर पर दिनकर जी ने सदैव गाँधी के विचारों का खुला खंडन किया। वहीं समाज में जो शोषित वर्ग, वर्ण-व्यवस्था, असमानता आदि समस्याओं पर प्रहार करते हुए लिखते हैं-

"बड़े वंश से क्या होता हैं, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश-धन-धाम।"[81]

कवि जातिगत भेदभाव को देश के विकास और समृद्धि के लिए घातक मानते हैं। 'रश्मिरथी' में कवि 'कर्ण' के माध्यम से अपने इन विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं-

"मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिये चलते हो,
मगर असल में, शोषण के बल से सुख में पलते हो!
अधम जातियों से थर-थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से मांग लिया करते हो अंगूठे का दान।
पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित ललाट से, और कवच-कुंडल से।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।"[82]

पुनः गाँधी की नोआखाली यात्रा और बिहार में हुए दंगों से आहत दिनकर लिखते हैं-

“जलते हैं हिंदू-मुसलमान,

भारत की आँखें जलती हैं।

ये छुरे नहीं चलते, छिदती

जाती स्वदेश की छाती है,

लाठी खाकर भारत माता

बेहोश हुई-सी जाती है।”[83]

1947 ई. में लिखित ‘ध्वज वंदना-१ तथा ध्वज वंदना-२’ कविता में दिनकर जी ने राष्ट्रीय ध्वज एवं उसमें समाहित शक्ति के विषय में वर्णन करते हुए लिखते हैं-

ध्वज वंदना-१

“नमो नगाधिराज- श्रृंग की विहारिणी!

नमो अनन्त सौख्य-शील-शक्ति-धारिणी!

प्रणय-प्रसारिणी, नमो अरिष्ट-वारिणी!

नमो मनुष्य की शुभेषणा-प्रचारिणी!

नवीन सूर्य की नई प्रभा, नमो, नमो!”[84]

ध्वज वंदना-२

“मंगलमूर्ति तिरंगा प्यारा,

झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

बल , बलिदान, विजय का साका,

सखा शूरता, निर्भयता का,

जनता की यह राजपताका,

जन-जन की आँखों का तारा।"[85]

1952 ई. में रचित 'नेता' कविता में कवि नेताओं के प्रति आक्रोशित नजर आते हैं। स्वाधीन भारत में राजनीतिक भ्रष्टाचार बढ़ गया और नेता भी स्वार्थी हो गये हैं। देश की जनता की तरफ नेताओं का ध्यान नहीं। कवि नेताओं से निराश हैं। वह जनता को प्रेरित करते हुए कहते हैं-

"उठ मंदिर के दरवाजे से,

जोर लगा खेतों में अपने;

नेता नहीं, भुजा करती है

सत्य सदा जीवन के सपने।

पूजे अगर खेत के ढेले

तो सचमुच कुछ पा जाएगा,

भीख याकि वरदान माँगता

पड़ा रहा तो पछतायेगा।

इन ढेलों को तोड़,

भाग्य इनसे तेरा जगनेवाला है।

नेताओं का मोह मूढ़!

केवल तुझको ठगने वाला है।"[86]

सन् 1953 ई. में लिखी उनकी कविता 'समर शेष है' में वे कहते हैं कि आजादी तो हमें मिल गयी परन्तु जब तक देश में अन्याय का अंत नहीं होगा युद्ध होते ही रहेंगे। इसलिए इस कविता की ध्वनि क्रांति की ध्वनि है। यह कविता जवाहरलाल नेहरू पर किये गए हमले से संबंधित है। कवि अन्याय को अनदेखा करने वालों की ओर संकेत करते हैं-

"समर शेष है, अभी मनुज-भक्षी हुंकार रहे हैं
गाँधी का पी रुधिर, जवाहर पर फुंकार रहे.....
समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध।"[87]

आजाद भारत की समस्याएं और दिनकर जी की भावना, देश में फैले भ्रष्टाचार और कालाबाजारी का विरोध करते हुए-

"अजब हमारा यह तन्त्र है।
नकली दवाइयों का व्यापारी स्वतंत्र है।
पुलिस करे जो कुछ, पाप है।
चोर का जो चाचा है, पुलिस का भी बाप है।
अखबार मुक्त है छुपाने को,
विज्ञापनदाताओं का मरम छुपाने को।"[88]

कवि ने 1954 ई. में 'भारत का यह रेशमी नगर' कविता की रचना की। देश के किसान एवं मजदूर वर्ग बड़ी आशाएं लगाकर बैठा था कि

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उनकी स्थिति में सुधार होगा। भारत आजाद तो हुआ परन्तु इनकी स्थिति वैसी की वैसी ही रही। स्वदेश के स्वार्थी नेताओं का ध्यान इनकी ओर नहीं गया। वह अपना दायित्व भूलकर खुद विलासी जीवन व्यतीत करने लगे। भारत की राजधानी दिल्ली के वैभव, देश में व्याप्त अभाव और विषमता का अत्यंत भावुक चित्रण कवि इस कविता में करते हैं। वे दिल्ली में रहने वाले भविष्य के भाग्य-विधाताओं को चेतावनी देते हुए उनसे सवाल पूछते हैं -

"रेशमी कलम से भाग्य-लेख लिखनेवालों,
तुम भी अभाव से कभी ग्रस्त हो रोये हो?
बीमार किसी बच्चे की दवा जुटाने में
तुम भी क्या घर भर पेट बाँध सोये हो?
असहाय किसानों की किस्मत को खेतों में
क्या अनायास जल में बह जाते देखा है?
'क्या खायेंगे?' यह सोच निराशा से पागल
बेचारों को नीरव रह जाते देखा है?
देखा है ग्रामों की अनेक रम्भाओं को,
जिनकी आभा पर धूल अभी तक छायी है?
रेशमी देह पर जिन अभागिनों की अब तक,
रेशम क्या ? साड़ी सही नहीं चढ़ पायी है।"[89]

भारत की आजादी के पश्चात् भारतीय राष्ट्रीयता संकुचित हो गई थी। परन्तु वह पुन: चीनी आक्रमण के दौरान जाग्रत हो गई थी। समस्त देश उस समय पराजय के अफ़सोस में डूबा हुआ था। देश अपनी प्रतिष्ठा के लिए व्याकुल हो गया। इसी भावना का सारांश दिनकर की 'जनता जगी हुई है' कविता में दिखायी देता है। बहुत ही ओजपूर्ण शैली में कवि देशवाशियों के संगठन और जोश का चित्रण करते हैं-

"जनता जगी हुई है।
भारत-भूमि में किसी पुण्य-पावक ने किया प्रवेश।
धधक उठा है एक दीप की लौ-सा सारा देश।
खोल रही नदियाँ, मेघों में शम्पा लहक रही है।
फट पड़ने को विकत शैल की छाती दहक रही है।
गर्जन , गूँज , तरंग , रोष, निर्घोष हाँक, हुँकार!
जानें , होगा शमित आज क्या खाकर पारावार!"[90]

जब दिनकर राज्यसभा के सदस्य थे। इस दौरान इन्होंने श्रृंगार रस से परिपूर्ण उर्वशी की रचना की थी। परन्तु तभी 1962 ई. में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण ने पूरे भारत को झकझोर दिया था। फिर ये आग उगलने वाली रचनाओं का सृजन करने लगे। 'स्व' की रक्षा के लिए इन्होंने हिंसा को अनिवार्य समझा। वे देशवाशियों को जाग्रत करते हैं और अपनी कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' के माध्यम से कहते हैं-

"सोये हैं जो रणबली, उन्हें टेरो रे!
नूतन पर अपनी शिखा प्रत्न फेरो रे!
झकझोरो, झकझोरो महान सुप्तों को,
टेरो, टेरो चाणक्य-चन्द्रगुप्तों को,
विक्रमी तेज, असि की उद्दाम प्रभा को,
राणा प्रताप, गोविन्द, शिवा, सरजा को,
वैराग्यवीर, वंदा फकीर भाई को,
टेरो, टेरो माता लक्ष्मीबाई को।"[91]

दिनकर जी कहते हैं कि हमारे देश के जवान जो सीमाओं की रक्षा कर रहे हैं। उन्हें यश, सम्मान और फूलों के हार की चाह नहीं। उन्हें शक्ति चाहिए ताकि वह भारत माँ की आन-बान और शान की रक्षा कर सके। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में संग्रहित 'लोहे के मर्द' (1962ई.) कविता में कवि जवान के माध्यम से कहते हैं-

"पुरुष वीर बलवान, देश की शान,
हमारे नौजवान, घायल होकर आये हैं।
कहते हैं, ये पुष्प, दीप, अक्षत क्यों लाये हो?
हमें कामना नहीं सुयश-विस्तार की,
फूलों के हारों की, जय-जयकार की।
तड़प रही घायल स्वदेश की शान है।
सीमा पर संकट में हिंदुस्तान है।"[92]

जब भारत पर चीन ने आक्रमण किया उस समय भारत की रक्षा के लिए कितने भारतीय फौजियों की जानें चली गईं और ऐसी परिस्थिति में भी तत्कालीन भारत के नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू शान्ति के लिए अपील कर रहे थे यह कितना हास्यास्पद था। इसी कारण दिनकर जी नेहरू का भी विरोध करते हैं-

"दोस्त ही है, देख के डरो नहीं।
कम्युनिस्ट कहते हैं, चीन से लड़ो नहीं।
चिंतन में सोशलिस्ट गर्क है,
कम्युनिस्ट और कांगरेसी में क्या फ़र्क है?
जनसंघी भारतीय शुद्ध हैं।
इसीलिए, आज महावीर बड़े क्रुद्ध हैं।"[93]

देश की भयावह एवं विकट परिस्थितियों को देखकर एक कवि के मन में जो उथल-पुथल होती है या जो चिंता होती है उसको दिनकर जी ने अपनी कविता के माध्यम से शासन सत्ता को लक्ष्य कर उस पर तंज कसते हुए वे लिखते हैं-

"लोग हैं आज़ाद बिललाने को।
नेता हैं आज़ाद जहाँ चाहें, वहाँ जाने को।
अफसर परम स्वतंत्र हैं।
मंत्रीजी हज़ार पढ़ें, लगते न मंत्र हैं।
साहब तो खुद परीशान हैं।

चपरासी देते उन्हें पानी न तो पान हैं।"[94]

अपनी आत्मरक्षा के लिए हिंसक होना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि पापी कभी अहिंसा के महत्व को नहीं समझ सकता। कुरुक्षेत्र में दिनकर जी की यही मनोकामना परिलक्षित होती है। जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो गांधी जी के सामने एक बड़ा प्रश्न था कि युद्ध किया जाए या नहीं। चीन ने भारत के साथ विश्वासघात किया था। इसलिए यहाँ दिनकर जी हिंसा का समर्थन करते हैं-

"हाय, मैं लिखूं युद्ध के गीत।

बंधु! हो गयी बड़ी अनरीत।

कंठ उर अंतर के विपरीत,

देशवासी। जागो। जागो।

रुधिर में रखे शीत या ताप ?

अहिंसा वर है अथवा शाप ?

युद्ध है पुण्य याकि दुष्पाप ?

आज सारा विवाद त्यागो।

गांधी की रक्षा करने को गांधी से भागो।"[95]

दिनकर जी कहते हैं किसी भी देश की अस्मिता उस देश के उद्दात आदर्शों तथा भावों से ज्ञात होता है। देश की रक्षा के लिए तटस्थ उस देश की जनता के बलिदान से होता है। दिनकर जी की राष्ट्रीय कविता

का मूल है। संकट के समय देश के प्रति देशवासियों को जाग्रत करना। दिनकर जी चाहते हैं कि भारत भौगोलिक रूप से न जाना जाए बल्कि देश के आदर्श व संस्कृति से जाना जाए-

"भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
भारत है भावना दाह जग-जीवन का हरने की।
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में खड़ा वहाँ भारत जीवित भास्वर है।"[96]

'किसको नमन करूँ' कविता में कवि ने भारत की संस्कृति, उदात्त आदर्शों व गुणों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। जिन महापुरुषों ने आदर्श के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। उन्हीं का गुणगान कवि 'किसको नमन करूँ', 'कलम आज उनकी जय बोल' कविता में करते हैं-

"भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है।
जहां कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहां खड़ा भारत जीवित भास्वर है।
निखिल विश्व को, जन्मभूमि-वंदन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?"[97]

निष्कर्षत: हमने देखा कि किस प्रकार दिनकर जी स्वतंत्रता से पहले से लेकर आजादी के बाद तक अपने काव्य के माध्यम से आदर्श राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रयत्न करते हैं। इसकी सूचना इस बात से मिलती है। दिनकर जी स्वयं कहते हैं- “रेणुका और हुंकार, सामधेनी और कुरुक्षेत्र, द्वंद्वगीत और बापू, इनमें मैंने जो कुछ भी गाया है, कंठ फाड़ कर गया है, हृदय चीर कर गाया है।”[98]

दिनकर जी के राष्ट्रीय काव्य का स्वर, तेजस्वी, ओजपूर्ण, आक्रोश से पूर्ण तथा क्रांतिकारी है। इनका राष्ट्रीय काव्य खंडित भारत की छवि नहीं दिखलाता बल्कि अखंड भारत की परिकल्पना करता है। दिनकर जी सदैव राष्ट्र के जागरूक पथ-प्रदर्शक रहे हैं उनके काव्य में अतीत का गौरव, वर्तमान की पुकार और भविष्य की सुनहरी आशाएँ ही जन्म लेती आयी हैं। ‘रेणुका’, ‘हुंकार’, ‘कुरुक्षेत्र’, ‘सामधेनी’, ‘परशुराम की प्रतीक्षा’ और ‘नीलकुसुम’ में उनका तेज चरम सीमा पर दिखता है। हिंदी के क्रांतिकारी व राष्ट्रीय कवियों में कम ही ऐसे कवि हैं, जिसने भारत के स्वर्णिम अतीत, वीरता, स्वाभिमान, आक्रोश और अधीरता को उजागर कर जन-जागरण किया। उनकी कविताएँ साधारणजन के कंठ में भी बसने लगी थीं। दिनकर जी को जनता का प्यार राष्ट्रीय कविताओं के कारण मिला। उनके द्वारा हिंदी साहित्य को दिए गए प्रासंगिक और अविस्मरणीय योगदान के लिए उन्हें सदैव याद किया जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. प्रसाद कृष्ण नारायण, हिंदी-साहित्य: युग और धारा, भारती भवन प्रकाशन, पटना प्र.सं.-2008, पृ. सं.-21-22
2. नागर पुरूषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्र.सं.-1980, पृ. सं.-400
3. नागर पुरूषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, जयपुर राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्र.सं.-1980, पृ. सं.-192
4. विमलेश एवं भंडारी आनंदचंद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, तृतीय सं.-1980, पृ. सं.-303
5. विमलेश एवं भंडारी आनंदचंद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, तृतीय सं.-1980, पृ. सं.-303
6. विमलेश एवं भंडारी आनंदचंद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, तृतीय सं.-1980, पृ. सं.-304

7. सम्पादित-वर्मा धीरेन्द्र, द्विवेदी हजारी प्रसाद, वर्मा वृजेश्वर, रघुवंश, हिंदी साहित्य, भारतीय हिंदी परिषद, प्रयाग,प्र. सं.-1973, पृ. सं.-32
8. प्रसाद कृष्ण नारायण, हिंदी-साहित्य: युग और धारा, भारती भवन प्रकाशन, पटना प्र.सं.-2008, पृ. सं.-624
9. सम्पादित-वर्मा धीरेन्द्र, द्विवेदी हजारी प्रसाद, वर्मा वृजेश्वर, रघुवंश, हिंदी साहित्य, भारतीय हिंदी परिषद, प्रयाग,प्र. सं.-1973, पृ. सं.-32
10. नागर पुरुषोत्तम, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्र.सं.-1980, पृ. सं.-29
11. विमलेश एवं भंडारी आनंदचंद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, तृतीय सं.-1980, पृ. सं.-8-9
12. विमलेश एवं भंडारी आनंदचंद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, तृतीय सं.-1980, पृ. सं.-9
13. विमलेश एवं भंडारी आनंदचंद, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, तृतीय सं.-1980, पृ. सं.-9

14. नगेन्द्र, हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, नयी दिल्ली, 66 वां संस्करण-2018, पृ. सं.-442

15. प्रसाद कृष्ण नारायण, हिंदी-साहित्य: युग और धारा, भारती भवन प्रकाशन, प्र.सं.-2008, पटना, पृ. सं.-22

16. दिनकर रामधारीसिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-1956, पृ. सं.-20-21

17. शर्मा रामाधार, श्री माखनलाल चतुर्वेदी (एक अध्ययन), सरस्वती मंदिर, बनारस, प्र.सं.-1995, पृ. सं.-05

18. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी(जवानी), सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहबाद, दूसरा सं., पृ. सं.-113

19. चतुर्वेदी माखनलाल, तिलक, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा सं., पृ. सं.-82

20. http://kavyaalaya.org/pushp_kee_abhilaashaa, दिनांक-25-05-2022

21. चतुर्वेदी माखनलाल, सिपाही, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहबाद, दूसरा सं., पृ. सं.-52

22. जोशी श्रीकांत, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली-7, वाणी प्रकाशन,द्वितीय सं.-2003, पृ. सं.-17

23. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-15

24. टंडन प्रेमनारायण, माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व, श्री नंदनंदन (प्रकाशक), लखनऊ,प्र.सं.-1970, पृ. सं.-142
25. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी(विद्रोही), सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं..-60
26. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी(तिलक), सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-81
27. चतुर्वेदी माखनलाल, कृष्णार्जुन युद्ध नाटक, प्रकाश पुस्तकालय, सांतवा सं., पृ. सं.-01
28. शर्मा रामाधार, श्री माखनलाल चतुर्वेदी (एक अध्ययन), सरस्वती मंदिर, बनारस, प्र.सं.-1995, पृ. सं.-65
29. चतुर्वेदी माखनलाल, कैदी और कोकिला, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहबाद, दूसरा सं., पृ. सं.-17
30. चतुर्वेदी माखनलाल, जवानी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा सं., पृ. सं.-116
31. महाले सुभाष, माखनलाल चतुर्वेदी और वि.दा. सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर सं.-1997, पृ. सं.-225
32. चतुर्वेदी माखनलाल, तिलक, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा सं., पृ. सं.-81

33. महाले सुभाष, माखनलाल चतुर्वेदी और वि.दा. सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर सं.-1997, पृ. सं.-226
34. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-144
35. चतुर्वेदी माखनलाल, हिमकिरीटिनी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, दूसरा संस्करण, पृ. सं.-120
36. महाले सुभाष, माखनलाल चतुर्वेदी और वि.दा. सावरकर की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर सं.-1997, पृ. सं.-132
37. शर्मा रामाधार, श्री माखनलाल चतुर्वेदी (एक अध्ययन), सरस्वती मंदिर, बनारस, प्र.सं.-1995, पृ. सं.-44
38. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-33
39. सिन्हा सावित्री, युगचरण दिनकर,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण-अक्तूबर, 1963, पृ. सं. -7
40. दिनकर रामधारी सिंह, आधुनिक बोध, पंजाबी पुस्तक भंडार, दिल्ली, प्र. सं.-1973, पृ. सं.-49
41. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-32

42. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-25

43. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र.सं.-1956, पृ. सं.-31

44. कुंदन, दिनकर के काव्य पर भारतीय राजनीति का प्रभाव, अपर प्रकाशन, नयी दिल्ली,संस्करण-2015, पृ. सं.-144-145

45. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-05

46. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-07

47. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-05

48. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-08

49. सिन्हा सावित्री, युगचरण दिनकर,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण-अक्तूबर, 1963, पृ. सं. -06

50. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-32

51. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-02

52. कुंदन, दिनकर के काव्य पर भारतीय राजनीति का प्रभाव, अपर प्रकाशन, नयी दिल्ली,संस्करण-2015, पृ. सं.-23

53. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949 , पृ. सं.-64

54. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-55

55. सिन्हा सावित्री, युगचरण दिनकर,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण-अक्तूबर, 1963, पृ. सं. -58

56. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-71-72

57. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-72

58. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-16

59. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल(हुंकार), उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-49-50

60. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-08

61. दिनकर रामधारी सिंह, कुरुक्षेत्र, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, सं.-1985, पृ. सं.-72

62. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-53
63. सिन्हा सावित्री, युगचरण दिनकर,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण-अक्तूबर, 1963, पृ. सं. -06
64. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल(आलोकधन्वा), उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-45
65. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949 , पृ. सं.-72
66. सिन्हा सावित्री, युगचरण दिनकर,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण-अक्तूबर, 1963, पृ. सं. -56
67. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949, पृ. सं.-06
68. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी,उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949 , पृ. सं.-56
69. दिनकर, रामधारी सिंह ,प्रणभंग तथा अन्य कविताएँ, राजपाल एण्ड सन्ज़, प्रथम संस्करण-1976, पृ. सं.-89-90
70. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949 , पृ. सं.-06-07
71. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी(दिल्ली और मास्को), उदयाचल, पटना, द्वितीय संस्करण-1949 , पृ. सं.-60

72. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-41
73. डॉ. कुंदन, दिनकर के काव्य पर भारतीय राजनीति का प्रभाव, अपर प्रकाशन, नयीदिल्ली, संस्करण-2015, पृ. सं.-144-145
74. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-60
75. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-49
76. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-69
77. सिन्हा सावित्री, युगचरण दिनकर,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण-अक्तूबर, 1963, पृ. सं. -73
78. दिनकर रामधारी सिंह, रेणुका, उदयाचल, पटना, संस्करण,15 नवम्बर 1954, पृ. सं.-18
79. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-69-70
80. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वि, सं.-1949, पृ. सं.-67
81. दिनकर रामधारी सिंह, रश्मिरथी, श्री अजंता प्रेस लिमिटेड, पटना, प्र. सं.-1952, पृ. सं.-07

82. दिनकर रामधारी सिंह, रश्मिरथी प्रथम सर्ग, लोकभारती प्रकाशन प्रयागराज चौदाहवाँ संस्करण सितंबर 2020, पृ. सं.-22
83. दिनकर रामधारी सिंह, सामधेनी, उदयाचल, पटना, द्वि, सं.-1949, पृ.-29-30
84. दिनकर रामधारी सिंह, प्रणभंग तथा अन्य कविताएँ, राजपाल एण्ड सन्ज़, प्रथम संस्करण-1976, पृ. सं.-116
85. दिनकर रामधारी सिंह, प्रणभंग तथा अन्य कविताएँ, राजपाल एण्ड सन्ज़, प्रथम संस्करण-1976, पृ. सं.-118
86. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल (नीम के पत्ते), उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-314
87. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, द्वि., सं.-1965, पृ. सं.-78
88. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, द्वि., सं.-1965, पृ. सं.-65
89. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-317
90. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल, पटना, द्वि., सं.-1965, पृ. सं.-41
91. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल,पटना, प्रथम सं.जनवरी 1963, पृ. सं.-09

92. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा, उदयाचल,पटना, प्रथम सं.जनवरी 1963, पृ. सं.-40

93. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा उदयाचल, पटना , प्रथम सं. जनवरी 1963, पृ. सं.-64

94. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा उदयाचल, पटना , प्रथम सं. जनवरी 1963, पृ. सं.-62

95. दिनकर रामधारी सिंह, परशुराम की प्रतीक्षा उदयाचल, पटना , प्रथम सं. जनवरी 1963, पृ. सं.-59

96. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, केदारनाथ सिंह, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-दिसम्बर 1954, पृ. सं.-119

97. दिनकर रामधारीसिंह, नीलकुसुम, केदारनाथ सिंह, उदयाचल, पटना, प्रथम संस्करण-दिसम्बर 1954, पृ. सं.-96

98. दिनकर रामधारी सिंह, चक्रवाल, उदयाचल, पटना, प्र. सं.-1956, पृ. सं.-30